छठा दृश्य ।

स्थान—उदयपुरके उदयसागरका किनारा । **समय**—प्रभात ।

[मेवाड़की राजकन्या अकेली घूमती हुई गा रही है ।]

राग कालिंगड़ा ।

करूँगी आज अनोखा प्यार० ॥
आई हूँ मैं तुम्हें प्रेमकी भिक्षा दूँगी दान ।
आओ भिक्षुक लाई हूँ यह, प्रेमपूर्ण मन प्राण ॥
देखूँ आज तुम्हारे मुखपर, क्षणभर हास्यविलास ।
प्रेमदान कर मैं रखती हूँ, इतनी ही अभिलाष ॥
नहीं रहेगा विरस हृदय यह, नहीं अश्रु-संताप ।
प्रेमनीर बरसाऊँगी जब, सहित सुहास्यालाप ॥
भग्नगृहोंमें नहीं सुनूँगी, और दीर्घ निश्वास ।
होगी वहाँ वेदना कैसे, जहाँ प्रेमका वास ॥
आज किसीको दिया प्रेम है, हरकर उसका शोक ।
इससे बहती नई पवन यह, फैला मधुरालोक ॥

[एक अन्धे बालकके साथ एक भिखारिणी आती है ।]

भिखारिणी—दाताकी जय हो !

[illegible] लड़का है ।

[illegible] लड़का है, यह जन्मसे ही

[illegible] है ।

[illegible] है । क्या यह हमें दोगी ?

[illegible] नहीं रह सकता सरकार ।

[illegible] पास रक्खो । पर इसे रोज

[illegible] अशरफी देती है ।)

भिखारिणी—सरकारकी जय हो, राज बना रहे ।

[बालकको साथ लेकर भिखारिणी चली जाती है ।]

मानसी—इस भिखारिणीका 'जय हो' कहना कितना मधुर जान पड़ता है । यह जय-भेरीसे भी प्रबल, माताके आशीर्वादसे भी अधिक प्रेमपूर्ण और बालकके मुँहसे पहले-पहल निकली हुई वाणीसे भी बढ़कर मधुर है ।

[अजयसिंह आते हैं ।]

अजय—मानसी !

मानसी—अज [illegible] समय मैं बहुत ही प्रसन्न

[illegible]री इस प्र[illegible] ी ।

[illegible] भी

[illegible]

छट्ठा दृश्य ।

स्थान—उदयपुरके उदयसागरका किनारा । **समय**—प्रभात ।

[मेवाड़की राजकन्या अकेली घूमती हुई गा रही है ।]

राग कालिंगड़ा ।

करूँगी आज अनोखा प्यार० ॥
आई हूँ मैं तुम्हें प्रेमकी भिक्षा दूँगी दान ।
आओ भिक्षुक लाई हूँ यह, प्रेमपूर्ण मन प्राण ॥
देखूँ आज तुम्हारे मुखपर, क्षणभर हास्यविलास ।
प्रेमदान कर मैं रखती हूँ, इतनी ही अभिलाष ॥
नहीं रहेगा विरस हृदय यह, नहीं अश्रु-संताप ।
प्रेमनीर बरसाऊँगी जब, सहित सुहास्यालाप ॥
भग्नगृहोंमें नहीं सुनूँगी, और दीर्घ निश्वास ।
होगी वहाँ वेदना कैसे, जहाँ प्रेमका वास ॥
आज किसीको दिया प्रेम है, हरकर उसका शोक ।
इससे बहती नई पवन यह, फैला मधुरालोक ॥

[एक अन्धे बालकके साथ एक भिखारिणी आती है ।]

भिखारिणी—दाताकी जय हो !

मानसी—क्यों जी यह तुम्हारा लड़का है ?

भिखारिणी—नहीं, यह मेरी बहनका लड़का है, यह जन्मसे ही अन्धा है । इसकी माँ मर गई है ।

मानसी—इसका बाप है ?

भिखारिणी—है तो, पर परदेश गया है ।

मानसी—आहा ! कैसा प्यारा लड़का है । क्या यह हमें दोगी ?

भिखारिणी—यह मुझे छोड़कर अकेला नहीं रह सकता सरकार ।

मानसी—अच्छा, तुम इसे अपने ही पास रक्खो । पर इसे रोज मेरे पास ले आया करो । यह लो । (एक अशरफी देती है ।)

मेवाड़-पतन ।

भिखारिणी—सरकारकी जय हो, राज बना रहे ।

[बालकको साथ लेकर भिखारिणी चली जाती है ।]

मानसी—इस भिखारिणीका 'जय हो' कहना कितना मधुर जान पड़ता है । यह जय-भेरीसे भी प्रबल, माताके आशीर्वादसे भी अधिक प्रेमपूर्ण और बालकके मुँहसे पहले-पहल निकली हुई वाणीसे भी बढ़कर मधुर है ।

[अजयसिंह आते हैं ।]

अजय—मानसी !

मानसी—अजय ! आओ आओ । इस समय मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ । मेरी इस प्रसन्नताका कुछ अंश तुम भी लो ।

अजय—तुम्हारी इस प्रसन्नताका क्या कारण है ?

मानसी—मेरी प्रसन्नता परिपूर्ण है । शरत्कालकी नदीसे भी बढ़कर परिपूर्ण है । आज एक भिखारिणी मुझे आशीर्वाद दे गई है ।

अजय—भला संसारमें ऐसा कौन होगा जो तुम्हें हृदयसे आशीर्वाद न देगा । मैं नित्य ही गलियों और बाजारोंमें लोगोंके मुँहसे मेवाड़की राजकुमारीकी प्रशंसा सुना करता हूँ ।

मानसी—तुम रोज सुनते हो ? यदि ऐसा होता तो अजय, क्या मैं एक दिन भी उसे न सुन सकती ?

अजय—एक दिन घरसे बाहर निकलो, अवश्य सुन सकोगी ।

मानसी—मैं तो घरसे बाहर निकलती हूँ । अजय ! मैंने यहाँ एक अतिथिशाला खोल रक्खी है । वहाँ मैं नित्य जाती हूँ और अपने हाथसे अतिथियोंको भोजन कराती हूँ । उन्हें विना अपने हाथसे खिलाये मेरा जी नहीं मानता ।

हिन्दीग्रन्थरत्नाकर-सीरीजका २२ वाँ ग्रन्थ ।

मेवाड़-पतन ।

सुप्रसिद्ध नाटककार

स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलालरायके बंगलानाटकका

हिन्दी अनुवाद । -

अनुवादक—

रामचन्द्रवर्मा,

सम्पादक नागरीप्रचारणीपत्रिका और

हिन्दीशब्दसागर ।

प्रकाशक—

हिन्दीग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय, बम्बई ।

माघ १९७३ वि० ।

फरवरी १९१७ ।

मूल्य बारह आने ।

राजसंस्करणका एक रुपया दो आने ।

सम्पादक और प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव-बम्बई।

मुद्रक—
जी. एन. कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
न० ४३४ ठाकुरद्वार, बम्बई।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर सीरीज।

हमारी सीरीजके स्थायी ग्राहकोंको प्रारम्भमें केवल आठ आना 'प्रवेश फी' भेजना होती है। उनको सीरीजकी सब पुस्तकें पौनी कीमतमें दी जाती है। अब तक इस सीरीजमें निम्नलिखित ग्रन्थ निकल चुके है जिनकी हिंदी-ससारमें बडी इज्जत हुई है.—

१-२ स्वाधीनता .. २)	१२ सफलता ... ... ॥≈)
३ प्रतिभा ... ... १)	१३ अन्नपूर्णाका मन्दिर ... ॥।)
४ फूलोंका गुच्छा ... ॥-)	१४ स्वावलम्बन... ... १।)
५ ऑखकी किरकिरी .. १॥)	१५ उपवासचिकित्सा .. ॥।≈)
६ चौबेका चिट्ठा ... ॥≡)	१६ सूमके घर धूम ... ≡)
७ मितव्ययता ... ..॥।≈)	१७ दुर्गादास ... .. ॥।≈)
८ स्वदेश ... ... ॥≈)	१८ बकिमनिबन्धावली ... ॥।)
९ चरित्रगठन और मनोबल ≈)॥	१९ छत्रसाल ... . १॥)
१० आत्मोद्धार ... १)	२० प्रायश्चित्त ... .. ।)
११ शान्तिकुटीर ... ॥।)	२१ अब्राहम लिंकन ... ॥≈)

हमारी अन्यान्य पुस्तकें।

१ व्यापारशिक्षा . ॥)	८ लन्दनके पत्र ... ≡)
२ युवाओंको उपदेश .. ॥≈)	९ ब्याहीबहू .. ≡)
३ शान्तिवैभव ... ।)	१० विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य -)
४ बूढेका ब्याह .. ।≈)	११ कनकरेखा (गल्पगुच्छ) ॥।)
५ पिताके उपदेश . -)॥	१२ सन्तानकल्पद्रुम . ॥।)
६ कठिनाईमें विद्याभ्यास ॥≈)	१३ वीरोंकी कहानियाँ ... ।≈)
७ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा ≈)॥	१४ दियातले अँधेरा ... -)॥

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई।

भूमिका।

इस ग्रन्थके मूल लेखक स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलाल राय बगभाषाके ख्यातनामा लेखक, कवि और नाट्यकार हो गये हैं। नाटकलेखकोंमें तो आपकी बराबरी करनेवाला इस देशमें शायद ही कोई हो। आपके नाटकोंका बगसाहित्यको बहुत बडा अभिमान है। आप उन युगप्रवर्तक लेखकोंमेंसे थे, जो अपनी प्रतिभासे साहित्यकी धाराको एक नई गति प्रदान कर जाते हैं।

द्विजेन्द्रबाबू अँगरेजीके एम. ए थे। आपका अँगरेजी भाषापर बहुत बडा अधिकार था। जब आप कृषिशास्त्रका अध्ययन करनेके लिए विलायत गये थे, उस समय आपने 'Lyrics of Ind' नामका अँगरेजी काव्य लिखा था, जिसे पढकर लोग विस्मयविमुग्ध हो गये थे। तत्कालीन अँगरेजी कवि सर एडविन आरनोल्डने उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशसा की थी और एक विदेशी पुरुषकी अँगरेजी भाषामें इतनी अधिक क्षमता देखकर आश्चर्य प्रगट किया था। उसी समय आपके मित्रोंने आपसे अपनी इस कवित्वशक्तिको मातृभाषाकी सेवामें नियोजित करनेकी प्रेरणा की, जो आप पर काम कर गई और उसका फल यह हुआ कि आप अपने जीवनमे नाटक, गीतिनाट्य, प्रहसन, काव्य और गान आदि अनेक प्रकारके लगभग २५ ग्रन्थरत्न अपनी मातृभाषाके श्रीचरणोंमें अर्पण करके अमरता लाभ कर गये। द्विजेन्द्रबाबूका स्वर्गबास हुए कोई चार वर्ष होगये। १७ मई सन् १९१३ को आपने यह धराधाम छोडा था। आपकी मृत्युसे बगसाहित्यससारमें अपार शोक मनाया गया था।

द्विजेन्द्रबाबूके प्राय सबही उत्तम नाटकोंको हमने पढा है। उनमें हमको एक अपूर्व ही आनन्द प्राप्त हुआ। हमने बम्बईकी प्रसिद्ध प्रसिद्ध नाटकमण्डलियोंके उर्दू, हिन्दी, गुजराती और मराठीके अनेक नाटक देखे हैं; परन्तु हमें ऐसे स्वर्गीय और पवित्र भाव, ऊँचे और मार्जित विचार, कहीं नहीं मिले। लेखनीकी हृदयको हिला देनेवाली और हृत्तन्त्रीको बजा देनेवाली ऐसी आश्चर्यजनक क्षमता हमने कहीं नहीं देखी। उच्चश्रेणीके कौटुम्बिकप्रेम,

जातीयप्रेम, और विश्वप्रेमसे आपकी रचना सराबोर है। मनुष्यस्वभावका चित्रण आपके नाटकोंमें बहुत ही अच्छा हुआ है। किसी भी पात्रको आप ले लीजिए, उसका एक निश्चित स्वभाव आदिसे अन्त तक एक खास सीमाके भीतर बहता हुआ दिखलाई देगा। अस्वाभाविकताका कहीं नाम भी नहीं। आपके आदर्श चरित्रोंकी चित्रशाला भी परम दर्शनीय है। पाषाणी (गीतिनाटय) में आदर्श ब्राह्मणचरित्र, राणा प्रतापसिंह (नाटक) में आदर्श क्षत्रियचरित्र, दुर्गादास (नाटक) में आदर्श पुरुषचरित्र और सीता (गीति-नाटय) में आदर्श स्त्रीचरित्र देखकर मन एक अपूर्व आदर्शलोकमें विचरण करने लगता है। आपके नाटकोंमें स्त्रीपात्रोंकी तो एक अपूर्व ही सृष्टि है। स्त्रीजातिकी इतनी प्रतिष्ठा, इतनी पवित्रता और इतनी महत्ता आप शायद ही किसी लेखककी रचनामें पायेंगे। द्विजेन्द्रबाबूकी भारतीय स्त्रियों पर अगाध श्रद्धा थी। जिस समय आपकी पत्नीका देहान्त हुआ उस समय आपकी अवस्था केवल ३५ वर्षकी थी, पर आपने द्वितीय विवाह नहीं किया—आजन्म ब्रह्मचर्य पालन किया। यदि आपसे कोई द्वितीय विवाहका अनुरोध करता था, तो आपकी आँखोंसे आँसू निकल पडते थे। कहते हैं कि आपने अपनी पति-प्राणा पत्नी श्रीमती सुरबालादेवीके साहचर्यसे ही स्त्रीजातिकी उस पवित्रता और महत्ताका अनुभव किया था जो आपकी रचनामें जगह जगह प्रस्फुटित हो रही है। आपकी दृष्टिमें इस देशके पुरुषोंका चरित्र स्त्रियोंकी तुलनामें बहुत ही तुच्छ था। 'बगनारी' नामक नाटकके एक गीतमे आपने कहा है—" हाय ! इन पुरुष-पशुओंके साथ इन स्वर्गकी अप्सराओंका सम्बन्ध किसने जोड दिया ! इन दासोंके पास ये बहुमूल्य रत्न कहाँसे आ गये ! इस गन्दी कीचड पर यह चन्द्रमाकी चाँदनी कहाँसे आ खिली ! "

आपकी रचनाकी इस अपूर्व सुन्दरतासे मुग्ध होकर और हिन्दीमे अच्छे नाटकोंका अभाव देखकर हमने आपके समस्त श्रेष्ठ नाटकोंके अनुवाद प्रकाशित करनेका संकल्प किया है। हमें आशा है कि हम अपने इस सकल्पको बहुत शीघ्र सिद्ध कर सकेंगे और थोडे ही समयमें द्विजेन्द्र बाबूके नाटक बंगलाके समान हिन्दी साहित्यकी भी शोभा बढाने लगेंगे।

आपके 'पुनर्जन्म' (सूमके घर धूम) और 'दुर्गादास' को हम पहले प्रकाशित कर चुके है। आज यह 'मेवाड-पतन' प्रकाशित हो रहा है।

द्विजेन्द्र बाबू जिस समय 'दुर्गादास' को लिख रहे थे, उसी समय इस नाटककी रचनाकी भी सूत्रपात हुआ था। रूसके सुप्रसिद्ध लेखक महर्षि टालसटाय पर लेखककी प्रगाढ़ भक्ति थी। टाल्सटायने जिस विश्वप्रेमका प्रचार किया था, इस नाटकमें लेखकने उसी विश्वप्रेमके सिद्धान्तके साथ अपनी हार्दिक सहानुभूतिका परिचय दिया है।

लेखकने मेवाड़-पतनकी भूमिकामें लिखा है—"मेरे रचे हुए अन्य नाटकोंसे इस नाटकमें एक विशेषता है। प्रकृत चरित्रको चित्रित करनेके सिवाय मेरे अन्य नाटकोंका और कोई उद्देश्य नहीं था।......परन्तु इस नाटकमें मैं एक महान् सिद्धान्तके–विश्वप्रेमके उद्देश्यको लेकर उपस्थित हुआ हूँ। इसमें कल्याणी, सत्यवती और मानसी इन तीन पात्रोंके चरित्र क्रमसे दाम्पत्यप्रेम, जातीयप्रेम और विश्वप्रेमकी मूर्तियोंके रूपमें कल्पित किये गये है। इस नाटकका मुख्य उद्देश्य विश्वप्रेमकी गरिमा और महत्ता प्रकट करना है।... .."

कविका आशय यह है कि जातिको उन्नत करनेके लिए मनकी सकीर्णताको मिटाना होगा–देशप्रेमके नामसे मनको सकुचित या मलीन करनेसे काम न चलेगा–हृदयको उदार बनाना होगा और मनुष्यता प्राप्त करनी होगी। कविने अपनी सारी मानसिक शक्तिको और सारे हृदयके आवेगको लगाकर अपने देशभाइयोको नाटकान्तके एक गीतमें समझाया है कि तुम्हारी मनुष्यता खो गई है। इस लिए अब तुम फिरसे मनुष्य बनो और उस मनुष्यताको प्राप्त करनेके लिए विश्वप्रेमी बनो। जब मनुष्य बन लोगे, तब ही तुम देशकी दीनता और दु:खको दूर करनेके अधिकारी बन सकोगे। इस विषयमें मानसी और सत्यवतीका सवाद उल्लेखयोग्य समझकर उद्धृत कर दिया जाता है—

"**मानसी**—जिस प्रकार स्वार्थकी अपेक्षा जातीयत्व बडा है उसी प्रकार जातीयत्वकी अपेक्षा मनुष्यत्व बडा है। यदि जातीयत्व मनुष्यत्वका विरोधी हो, तो मनुष्यत्वके महासमुद्रमें उस जातीयत्वका विलीन हो जाना अच्छा है। अच्छा हो यदि ऐसे मनुष्यत्वविहीन देशकी स्वाधीनता डूब जाय और वह जाति फिर मनुष्य बन जाय–गये हुए मनुष्यत्वको फिर प्राप्त करे।

सत्यवती—बहिन, क्या कभी ऐसा होगा?

मानसी—क्यों न होगा! हम सबको चाहिए कि उसीकी साधना करें। उस साधना कभी निष्फल नहीं होती। इस जातिके लोग फिर मनुष्य बनेंगे।

सत्यवती—कब ?

मानसी—जिस दिन लोग सीमासे बाहर पहुँचे हुए आचारोंके और क्रिया-काण्डोंके क्रीत दास न रहकर स्वय सोचना विचारना सीखेंगे, जिस दिन उनके भीतर भावोंके स्रोत फिरसे बहेंगे, जिस दिन ये लोग जिसे उचित और करने योग्य (कर्तव्य) समझेंगे, उसे निर्भय होकर किये जायेंगे, किसीकी प्रशसाकी अपेक्षा न रक्खेंगे—किसीकी टेढी की हुई भौंहोंकी जरा भी परवा न करेंगे और जिस दिन ये युगोंकी पुरानी पोथियोंको फेंक कर नया धर्म ग्रहण करेंगे।

सत्यवती—मानसी, वह नया धर्म कौनसा ?

मानसी—उस धर्मका नाम है प्रेम। जो कोई इस धर्मका उपासक बनता है उसे अपने आपको छोडकर क्रमश भाईके साथ, जातिके साथ मनुष्यके साथ और उसके बाद मनुष्यत्वके साथ प्रेम करना सीखना पडता है। इसके बाद उसे स्वय और कुछ नहीं करना पडता, ईश्वरका कोई अज्ञेय नियम उसके भविष्यतको स्वय ही सुधार देता है। बहिन, जातीय उन्नतिका मार्ग लहूकी नदियोंके बीचमेंसे होकर नहीं, किन्तु आलिंगनके मध्यमेंसे होकर है......।

राणा—मानसी, मनुष्य किस प्रकार बना जाता है ?

मानसी—शत्रु-मित्रका ज्ञान भूलकर, विद्वेष त्याग कर, अपनी कालिमा और देशकी कालिमाको विश्वप्रेमके जलसे धोकर !—गाओ चारणियो—

> किसेर शोक करिस भाई !—आवार तोरा मानुष ह'।
> गियेछे देश दु:ख नाई,—आबार तोरा मानुष ह'।
> परेर 'परे केन ए रोष, निजेरई यदि शत्रु हो' स ?
> तोदेर ए जे निजेरई दोष, आवार तोरा मानुष ह'।
> भूलिये जारे आत्मपर, परके निये आपन कर,
> विश्व तोर निजेर घर,—आवार तोरा मानुष ह'।
> शत्रु हय होक ना, यदि सेथाय पास् महत्प्राण,
> ताहारे भालवासिते शेख्, ताहारे कर् हृदय दान।
> मित्र होक,—भण्ड जे—ताहारे दूर करिया दे,
> सबार बाडा शत्रु से, आवार तारा मानुष ह'।
> जगत् जुडे दुइटि सेना, परस्पर रॉगाय चोक्,
> पुण्य सेना निजेर कर, पापेर सेना शत्रु होक्।

धर्म जथा सेथाय थाक; ईश्वरेर माथाय राखू,
स्वजन देश डुबिया आक,—आवार तोरा मानुष ह ' * । "

इस नाटकमें ऐसी और भी अनेक बातें हैं जिनसे बहुत कुछ सोचा समझा और सीखा जा सकता है । जैसे-"यदि मुसलमानोंकी सख्या कम हो जायगी तो वे हिन्दुओंको मुसलमान बनाकर उसकी पूर्ति कर लेंगे और फिर लड़ेंगे । पर हिन्दू मुसलमानोंको हिन्दू नहीं बना सकते, बल्कि जो किसी कारण मुसलमान बन गये है, उन्हें भी वापस नहीं लेते । "

"जिनके रक्तमें मृत्युका बीज मिला हुआ है, क्या वे भी एक दूसरे पर प्यार न करके घृणा कर सकते हैं ? "

"पृथिवीमें दो राज्य हैं-एक स्वार्थका और दूसरा त्यागका । एकका जन्मस्थान है नरक और दूसरेका स्वर्ग । एकका देव है शैतान और दूसरेका ईश्वर । मै अभी तक स्वार्थके राज्यमें रहता था, पर उस दिन मैने त्यागका राज्य देखा । उस राज्यके राजा है बुद्ध, ईसा और गौराङ्ग, उस राजाकी राजनीति है स्नेह, दया और भक्ति । उस राज्यका शासन है सेवा, दण्ड है अनुकम्पा और आत्मोत्सर्ग या बलिदान है पुरस्कार । मैं उस दिनसे उस राज्यकी प्रजा बन गया-जिस हाथसे कभी तलवार नहीं पकड़ी थी, उस हाथमे दुखियोंकी रक्षाके लिए तलवार पकड ली । उस समय मेरे कन्धोंपर डाकुओंने जो तलवारोंके आघात किये वे फूलों जैसे कोमल मालूम हुए ।...... पहले मैं मरनेसे बहुत डरता था, परन्तु अब मुझे जरा भी डर नहीं है ।" +

यह नाटक कलकत्तेके मिनर्वा थियेटरमे अभिनीत हो चुका है । इसे जिस प्रकार दर्शकोंने पसन्द किया है उसी प्रकार साहित्यसेवकोंने भी इसकी भूरि भूरि प्रशसा की है । एक प्रवीण समालोचकने तो इसे ' इस युगका सर्वगुणसम्पन्न श्रेष्ठ प्रकाश ' कह डाला है । हमको आशा है कि हमारे गुणग्राही

* इस गीतका हिन्दी अनुवाद ग्रन्थके अन्तिम दृश्यमें दिया है बंगला जाननेवाले पाठकोंको मूलके भावका आस्वादन करानेके लिए यहाँ बँगलागीत ज्योंका त्यों उद्धृत कर दिया गया है ।

+ ग्रन्थमें यह अंश उर्दू-प्रचुर भाषामें दिया है । यहाँ शुद्ध हिन्दीमें दिया जाता है ।

हिन्दी–ससारमे भी इसका यथेष्ट आदर होगा और इसके अभिनयसे जो विश्व-प्रेमकी मन्दाकिनी बहेगी उसमे हमारे देशका चिरसञ्चित धार्मिकद्वेष धीरे धीरे अवश्य बह जायगा।

अन्तमे हम स्वर्गीय द्विजेन्द्र बाबूके सुयोग्य पुत्र श्रीमान् दिलीपकुमार राय महाशयके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके इस वक्तव्यको समाप्त करेंगे जिनकी कृपासे हम इस नाटकको प्रकाशित कर सके और जिन्होंने अपनी प्रशसनीय उदारतासे हमें अपने पिताके समस्त ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करनेकी अनुमति दे दी है।

निवेदक—

माघशुक्ला १०
स० १९७३ वि०

नाथूराम प्रेमी।

कृतज्ञता-प्रकाश ।

हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक और सुकवि कलकत्ता-निवासी श्रीयुक्त प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीका मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होने कृपाकर इस नाटकके लिए इतने सुन्दर और मनोहर गीत बना दिये है। कालिका स्टार्सके अध्यक्ष श्रीयुक्त बा० मदनलाल गाडोदिया और भारतमित्रके सयुक्त सम्पादक अपने परमप्रिय मित्र श्रीयुक्त प० वासुदेवमिश्रका भी मै अत्यंत अनुगृहीत हूँ जिन्होने उन गीतोंकी लय आदि ठीक करके उन्हें गानेके लिए बहुत ही उपयुक्त बना दिया है ।

—रामचन्द्र वर्म्मा ।

नाटकके प्रधान पात्र ।

नट ।

राणा अमरसिंह	मेवाडके राणा ।
सगरसिंह	अमरसिंहके बड़े भाई ।
महाबतखॉ (मुगल-सेनापति)	सगरसिंहके पुत्र ।
अरुणसिंह (सत्यवतीका पुत्र)	महाबतखाँका भानजा ।
गोविन्दसिंह	राणा अमरसिंहके सेनापति ।
अजयसिंह	गोविन्दसिंहके पुत्र ।
गजसिंह	जोधपुरके राजा ।
हिदायतअली, अब्दुल्ला }	मुगल-सेनापति ।
हुसैन	हिदायतअलीका अधीनस्थ कर्मचारी ।

नटी ।

राणी रुक्मिणी	राणा अमरसिंहकी स्त्री ।
मानसी	राणा अमरसिंहकी कन्या ।
सत्यवती	सगरसिंहकी कन्या ।
कल्याणी	महाबतखाँकी स्त्री ।

मेवाड़-पतन ।

पहला अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान—सलूम्बर-नरेश गोविन्दसिंहका घर ।

समय—दोपहर ।

[गोविन्दसिंह और उनके पुत्र अजयसिंह खडे हुए बातें कर रहे है ।]

गोविंद०—अजय, राणाजीने यह बात किससे सुनी कि मुगल-सेना मेवाड पर आक्रमण करनेके लिए आ रही है ?

अजय०—जी, यह तो मुझे नहीं मालूम ।

गोविंद०—राणाजीने तुमसे क्या कहा था ?

अजय०—उन्होने यही कहा था कि हम सन्धि करना चाहते हैं । इसीलिए उन्होने कल सबेरे दरबारमे सब सामन्तोको बुलवाया है; साथ ही आप भी बुलाये गये है ।

गोविंद०—मुझे उन्होने किस लिए बुलाया है ?

अजय०—सलाह करनेके लिए ।

गोविंद०—सन्धिके सम्बन्धमें सलाह करनेके लिए ?

अजय०—जी हाँ !

गोविंद०—लेकिन अजय, आज तक तो मैने कभी सन्धिके सम्बन्धमें कोई बातचीत की ही नहीं। लगातार पच्चीस वर्षोंसे मैं तो केवल युद्ध ही करता आया हूँ। मै तो केवल तलवारोकी झनकार, भेरियोंका भैरव-निनाद, घोडोंका हींसना, घायलोका चिल्लाना और छटपटाना जानता हूँ। इतने दिनोसे मैं तो केवल ये ही सब बाते देखता आया हूँ। शत्रुके साथ सन्धि तो मैने आज तक देखी ही नही। मै तो यह भी नहीं जानता कि सन्धि कैसे की जाती है। (अजयसिंह चुपचाप खडे रहते हैं, कोई उत्तर नहीं देते। गोविन्दसिंह सिर नीचा करके कुछ सोचते हैं, और तब फिर पूछते है)—राणाजीने तुमसे यह भी कहा है कि वे क्यो सन्धि करना चाहते हैं ?

अजय०—उन्होने कहा था कि इधर कई वर्षोंसे मेवाडकी दशा बहुत कुछ सुधर गई है, अब इस धनधान्यपूर्ण और सुन्दर देशमे व्यर्थ रक्तपात करना ठीक नहीं।

गोविंद०—इसीलिए मुगलोकी जूतियाँ सिर पर रखनी चाहिए ? जिस दिन विलासने आकर स्वर्गीय महाराणा प्रतापसिहकी स्वेच्छा-वृत दरिद्रताके स्थान पर बलपूर्वक अधिकार किया था, उसी दिन मैने समझ लिया था कि मेवाडका पतन अब बहुत दूर नहीं है। उस महापुरुषने मरनेके समय कहा था कि हमारे पुत्र अमरसिंहके राजत्व-कालमे मेवाड़ देश मुगलोंके हाथ बिक जायगा। मुगल भी शक्ति-

मदसे पागल और अन्धे हो रहे हैं। चलो, इस वार सर्वस्व नष्ट हो जायगा।

अजय०—राणाजीने भी तो यही कहा था कि अब मुगलोंका मुकाबला करना मेवाडके लिए असम्भव है; इसलिए व्यर्थ रक्त-पात क्यों किया जाय?

गोविंद०—अजय! क्या तुम भी उन्हींकी तरह हो गये? क्या तुम चाहते हो कि हम लोग दास होकर जुँएँमे गला फँसा दें? मैं जानता हूँ कि मुगल दिल्लीके बादशाह है; और बादशाहके विरुद्ध विद्रोह करना पाप है! लेकिन मेवाड राज्य भी तो अभी तक स्वाधीन ही है। जब तक गोविन्दसिहके शरीरमें प्राण हैं तब तक उसकी स्वाधीनता नष्ट न होने पायगी। लगातार सात सौ वर्षोंसे मेवाडकी जो रक्त-ध्वजा हजारो आँधियों और बिजलियोंकी परवा न करके अभिमानपूर्वक उड़ रही है, वह क्या केवल मुगलोंकी लाल लाल ऑखें देखकर गिर जायगी? कभी नहीं। तुम जाओ और राणाजीसे कह दो कि मै आता हूँ।

[अजयसिंह जाते हैं।]

(अजयसिंहके चले जानेपर गोविन्दसिंह दीवारपरसे टँगी हुई तलवार उतारते है, उसे धीरेधीरे म्यानसे बाहर निकालते हैं और तब उसे सम्बोधन करके कहते हैं)—“ मेरी प्यारी साथ देनेवाली! देखो, जबतक तुम मेरे हाथमें रहो तब तक महाराणा प्रतापसिंहका अपमान न होने पावे। प्यारी! इतने दिनों तक मैं तुम्हे भूल गया था, शायद इसीलिए तुम इतनी मलीन हो रही हो! लेकिन तुम व्याकुल मत होओ। इस बार मैं तुम्हे अपने साथ मेवाड़के युद्धमें ले चलूँगा। तुम्हे मुगलोंका गरमा-गरम लहू पिलाऊँगा। तुम मुझे क्षमा करो और मुझसे गले मिलो।”

(तलवारको कलेजेमे लगाते है और तब उसे धीरे धीरे घुमानेकी चेष्टा करते है । फिर कहते है)—" नहीं हाथ काँपता है; जान पडता है कि अब मुझसे तुम्हारी मर्य्यादाकी रक्षा न हो सकेगी । अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ । " (तलवार रखकर और दोनों हाथोंसे सिर पकड कर बैठ जाते है । आँखोंमेंसे आँसू निकल पडते है । तब कहते हैं,)—" हे ईश्वर ! यह तुमने क्या किया ? " (खडे होकर फिर तलवार उठाते हैं । इत-नेमें उनकी कन्या कल्याणी आ जाती है ।)

कल्याणी—पिताजी ! यह क्या है ?

गोविंद०—यह तलवार है बेटी, देखो ।

कल्याणी—नहीं पिताजी, आप उसे रख दीजिए । आज आपने अचानक हाथमें तलवार क्यों ले ली ? आप उसे रख दीजिए । आपको हाथमे तलवार लिये देखकर मुझे डर लगता है ।

(गोविन्दसिंह तलवारकी नोक जमीनपर टेक देते है और प्रेम भरी दृष्टिसे उसकी ओर देखकर कल्याणीसे कहते हैं,)—"देखो कल्याणी ! यह तलवार कैसी भयकर और कैसी सुन्दर है ! जानती हो, यह क्या माँगती है ? "

कल्याणी—नहीं, क्या माँगती है ?

गोविंद०—लहू ।

कल्याणी—किसका ?

गोविंद०—मुसलमानोंका ।

कल्याणी—लेकिन पिताजी, मुसलमानोंपर आपका इतना क्रोध क्यो है ?

गोविन्द०—इसका कारण तुम अपनी जन्मभूमि मेवाड़से पूछो । सात सौ वर्षोंसे मुसलमान बार बार इस स्वाधीन राज्यको अपने

अधीन करनेके लिए राक्षसोकी तरह उसपर टूटते हैं, लेकिन जिस तरह पहाडसे टकरा कर समुद्रकी लहरें लौट जाती हैं उसी तरह वे भी हरबार लौट जाते है। कोई पूछे, इस बेचारे मेवाडने उनका क्या अपराध किया है ? लेकिन जब मनुष्य शक्तिमदसे अन्धा हो जाता है तब उसे न्याय और अन्याय कुछ नही सूझता, उस समय यह तलवार ही उसे अन्याय करनेसे रोक सकती है। लेकिन हाय ! कल्याणी, क्या कहूँ, अब मै बहुत बूढा हो गया हूँ।

[कल्याणी रोती है।]

गोविन्द०——क्यो कल्याणी, तुम रोती क्यो हो ? क्या तुम्हें डर लगता है ? डरो मत । मै इसे म्यानमे रख देता हूँ। (तलवारको म्यानमे रखकर) जाओ, तुम अन्दर जाओ। मै भी जाता हूँ।

[गोविन्दसिंह चले जाते है।]

कल्याणी——पिताजी ! यदि आप कुछ सोचते, कुछ समझते——

दूसरा दृश्य ।

स्थान–उदयपुरकी एक सडक । **समय**–तीसरा पहर ।

[कई चारणोंके साथ सत्यवती गाती है।]

भैरवी ।

है मेवाड पहाड य जूझा जहाँ सिंह परताप।
अटल रहा पर्वतसा यद्यपि सहे घोर सन्ताप॥
धधकी रूपागिन पदमिनकी जहाँ प्रबल चहुँओर।
कूद पड़ी थी जिसमें सेना यवनोंकी घनघोर॥
है मेवाड़ पहाड़ यह जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है॥

है मेवाड़ पहा यही जहँ लाल हुआ है नीर।
रक्त बहा मर मिटे जहाँ हैं लाखों छत्री वीर॥
म्लेच्छ राजको गढ़ चितौरसे मार भगाया दूर।
हर लाया उसकी कन्याको बाप्पा रावल सूर॥
है मेवाड़ पहाड़ यह जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है॥
है मेवाड़ पहाड़ यह गलता बन करके नित छीर।
मधुर सुखद है सबसे जिसके अन्न फूल फल नीर॥
कुंजोंमें करते हैं कलरव जहाँ सारिका कीर।
काननमें जहँ बहै सुगन्धित शीतल मन्द समीर॥
है मेवाड़ पहाड़ यह जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है॥
नभको इस मेवाड़ शलका शिखर रहा है चूम।
भरी हुई है स्वर्गज्योतिसे यह सारी वनभूम॥
वनफूलोंसे ललनायें सब करती हैं शृङ्गार।
दयावती पतिव्रता साहसिन नाहिं ऐसी संसार॥
है मेवाड़ पहाड़ यह जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है॥

[इतनेमें अजयसिंह वहीं आ पहुँचते हैं।]

सत्यवती—क्या आप सैनिक हैं?

अजय—हाँ, मै मेवाडका एक सेनापति हूँ।

सत्यवती—मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ। मैंने जो कुछ सुना है क्या वह सत्य है?

अजय—तुमने क्या सुना है?

सत्यवती—यही कि मुगल-सेना फिर मेवाड़ पर आक्रमण करनेके लिए आरही है।

अजय—अभी आ तो नहीं रही है; पर हाँ, यदि राणाजी सन्धि न करेंगे तो वह अवश्य आकर आक्रमण करेगी। मुगल-सेनापतिने यही जाननेके लिए अपना एक दूत भेजा है कि राणाजी लडेंगे या सन्धि करेंगे।

सत्यवती—क्या आप लोग युद्धके लिए तैयार हैं ?

अजय—राणाजी जैसी आज्ञा देंगे हम लोग वैसा ही करेंगे। युद्ध या सन्धि राणाजीकी इच्छा पर निर्भर है।

सत्यवती—क्या आपको कुछ माळूम है कि राणाजी युद्ध करेंगे या सन्धि ?

अजय—नहीं। पर तो भी जहाँतक मै समझता हूँ, राणाजी सन्धि करना चाहते है। इसी सम्बन्धमें परामर्श करनेके लिए उन्होंने मुझे पिताजीको बुलाने भेजा था।

सत्यवती—आपके पिता कौन हैं ?

अजय—मेवाडके प्रधान सेनापति गोविंदसिंह।

सत्यवती—आप सेनापति गोविंदसिंहके पुत्र हैं ! भला बतलाइए तो सही, उनकी क्या इच्छा है ?

अजय—वे तो युद्ध ही करना चाहते है।

सत्यवती—बहुत ठीक। मैने आपको बहुत कष्ट दिया। अब आप जा सकते है।

[अजयसिंह वहाँसे चले जाते हैं।]

सत्यवती—सन्धि ! क्या राणा प्रतापसिंहके पुत्र मुगलोंके साथ सन्धि करनेका विचार करते है ! नहीं, यह कभी नहीं हो सकता, अवश्य ही इसमें कुछ भ्रम हुआ है। (चारणोंसे) तुम लोग इसी पेडके नीचे मेरी राह देखना। मैं अभी आती हूँ।

[सब चारण एक ओर जाते हैं और सत्यवती दूसरी ओर जा

तीसरा दृश्य ।

स्थान—उदयपुरमे मेवाडकी राजसभा। **समय**—प्रभात।

[सिंहासनपर राणा अमरसिंह बैठे है। उसके दोनों ओर और सामने सामन्त लोग है। गोविन्दसिंह एक तरफ खडे है।]

जयसिंह—महाराज! इस विषयमे राजपूतोंमें कोई मतभेद नही है कि जब मुगल-सेना मेवाड तक पहुँच गई है, तब हम लोगोको क्या करना चाहिए। हम लोग लडेंगे।

राणा—जयसिंह! यह छोटासा राज्य किसके बल पर इतने बडे बादशाह शाहंशाह जहाँगीरकी विराट् मुगल-सेनाका सामना करेगा?

जयसिंह—महाराज! क्षत्रियोकी शूरताके बल पर।

कृष्णदास—महाराजके स्वर्गीय पिता महाराणा प्रतापसिंहजीने किसके बल पर मुगलोका सामना किया था?

राणा—उनकी बात छोड दो। वे मनुष्य नही थे।

शंकर—वे भी तो राजपूत ही थे।

राणा—नहीं शंकर, वे मनुष्य नहीं थे। वे केवल एक दैवी शक्तिकी तरह, आकाशके वज्रपातकी तरह, पृथ्वीके भूकम्पकी तरह, समुद्रकी लहरकी तरह हम लोगोमे अचानक आगये थे। कोई नहीं कह सकता कि वे कहाँसे आये थे और कहाँ चले गये। सब लोग उनकी बराबरी नहीं कर सकते।

कृष्णदास—यह बात ठीक है कि सब लोग उनकी बराबरी नहीं कर सकते, पर तो भी सब लोग यह आशा अवश्य रखते हैं कि उनके पुत्र उन्हींका अनुकरण करेंगे। स्वर्गीय महाराणाजीने मेवाडकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपने प्राण दिये; और उनके पुत्र बगैर लडेभिडे ही मुगलोकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे?

राणा—कृष्णदास ! यह एक सुन्दर अनुभूति मात्र है। इधर कई वर्षोंसे मेवाड़की प्रजा धनी, सुखी और सम्पन्न होगई है। राज्यमें बहुत शान्ति विराज रही है। क्या केवल उसी अनुभूतिके लिए इतने सुख, इतनी स्वच्छन्दताका नाश कर दिया जाय? जब कि केवल नाम मात्रका कर दे देनेसे ही इतने रक्तपातसे रक्षा हो सकती है, तो व्यर्थ इतनी हत्याये क्यो हो ?

शकर—महाराज! हम लोग कर देगे ? किसे ? मुगलोंको ? वे कर लेनेवाले होते कौन है? वे किस अधिकारसे भगवान् रामचन्द्रके वशधरोंसे कर चाहते है ?

राणा—थोडासा कर देकर इस सुख, शान्ति और स्वच्छन्दताकी रक्षा करना अच्छा है, या कर न देकर इन सबको खो बैठना ? क्यो गोविन्दसिहजी ! आपकी क्या सम्मति है ?

गोविन्द०—(चौक कर) भला मै इस विषयमे क्या सम्मति दूँगा ? मै कुछ नही कह सकता और न मै इन सब बातोको समझता ही हूँ। मै तो जानता ही नहीं कि सुख, शान्ति और स्वच्छन्दता किसे कहते है। मै केवल दु:ख जानता हूँ। बाल्यावस्थासे ही मेरा दु खका साथ रहा है, विपत्तिकी गोदमे ही मै पला हूँ। महाराज मै बराबर पच्चीस वर्ष तक स्वर्गीय महाराणाजीके साथ जगलों पहाडोमे भूखा प्यासा घूमता रहा हूँ। उस महात्माकी सेवामे रहकर पच्चीस वर्ष तक मैने दरिद्रताके व्रतका ही अभ्यास किया है। उन पच्चीस वर्षोंमें मैने दु:खका ही परम सुख भोगा है। उस सुखका क्या पूछना है! दूसरोंके लिए दु:ख भोगनेमें कैसा सुख मिलता है! कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए दरिद्रता भोगना कैसी अच्छी बात है! प्रातःकाल सूर्य्यकी सोनहरी किरणें जिस स्नेहके साथ उस दरिद्र-

महाबत—वह भाजे हुआ करें, इसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन इतनी बडी फौजकी सिपहसालारी आसान काम नहीं है। उनके साले इनायत खाँ भी तो उनके साथ ही हैं न ?

अब्दुल्ला—मुमकिन है, हो।

महाबत—इनायत खाँ बेशक सिपाही आदमी है। वह जग कर सकता है। मालूम होता है, बादशाह सलामतने हिदायत खाँको बराय-नाम सिपहसालार बना दिया है। असली सिपहसालार इनायतखाँ ही है।

अब्दुल्ला—जनाब, अगर किसीको बराय-नाम सिपहसालार बना दिया जाय, तो भी कमसे कम इतना तो जरूर होना चाहिए कि वह बन्दूककी आवाज सुन कर तो डर न जाय!

महाबत—खैर। इस बार मेवाडकी लडाईमे सब पता लग जायगा।

अब्दुल्ला—क्या बादशाह सलामतने आपको भी मेवाड़की लडाई पर भेजनेके लिए याद फरमाया था ?

महाबत— हाँ, सैयद साहब!

अब्दुल्ला—तब आप इस लडाईमे तशरीफ क्यो न ले गये ?

महाबत—बात यह है कि मेवाड मेरा वतन है। बादशाह सलामत मुझे बगाल, गुजरात और दक्खिन जहाँ भेजे, मैं जानेको तैयार हूँ। लेकिन मेवाड जीतनेके लिए जाना मै ठीक नहीं समझता।

अब्दुल्ला—ऐसी हालतमें जब कि मेवाड़ आपका वतन है आपका फरमाना बजा है। अच्छा, तो अब देर हो रही है। मुझे इजाजत दीजिए, आदाब अर्ज करूँ।

महाबत—तसलीम।

[अब्दुल्ला जाता है।]

महाब्बत—चलो, यह अच्छा ही हुआ कि हिदायतखाँ सिपहसालार हो गये। खूब तमाशा देखनेमे आयगा। यह तो जबरदस्ती किसी भिख-मँगेको पकड कर बढिया सजे हुए घोडेपर सवार करा देना है।

[जाते है।]

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—मोगलोंकी छावनी। **समय**—दोपहर।

[मोगल सेनापति खान-खाना हिदायत अली खाँ बहादुर अपने सरदार हुसैनके साथ बातें कर रहे है।]

हिदायत—हें· हुसैन! इन काफिरोको फतह करना तो मुरब्बा ाानेसे भी आसान है।

हुसैन—जनाब आली! आप इस कामको जितना आसान समझ रहे हैं हकीकतमे वह उतना आसान नहीं है। लगातार सात सौ बरससे मुसलमानी सल्तनतके सामने यह छोटीसी रियासत बराबर सिर ऊँचा किये खडी रही है। यहाँ तक कि खुद अकबर बादशाह भी उसका सिर न झुका सके।

हिदायत—हे अकबरके पास कोई अच्छा सिपहसालार न होगा। हाँ उस वक्त अगर खानखाना हिदायत अली खाँ होते तो दिखला देते!

हुसेन—क्यों जनाब! मानसिंह क्या कुछ कम थे?

हिदायत—हें: बेचारे मानसिंहको क्या आता था? वह क्या लड सकता था?

[बावर्ची आता है।]

बावर्ची—खुदावन्द! खाना तैयार है।

हिदायत—अगर मानसिंह सिपहसालार हो सकता था, तो हमारे बावर्ची जाफर मियाँ भी सिपहसालार हो सकते हैं। क्यो जी जाफर मियाँ !

जाफर—हुजूर ! खाना तैयार है।

हिदायत—तुम फौजके साथ लड सकते हो ?

जाफर—हुजूर ! मुरगीका कोफ़ता।

हिदायत—हाँ हाँ, हम समझते है, तुमने बहुत अच्छा किया जो मुरगीका कोफता तैयार किया। लेकिन मै पूछता हूँ कि तुम जग कर सकते हो ?

जाफर—कबाब ? हुजूर ! वह भेडेका है।

हिदायत—बहुत ठीक ! अब हम भी यहाँ भेडेका कबाब बनायँगे। अच्छा, तुम चलो हम आते है।

[जाफर जाता है।]

हिदायत—हुसैन ! अब यहाँ भेडेका कबाब बनेगा।

हुसैन—किस भेड़ेका ?

हिदायत—किस भेडेका ? इन्हीं राजपूतोंका। ये भी तो भेडे ही है।

हुसैन—जनाब, माफ कीजिए। इस बारेमे मै आपको रायसे इत्तफाक नहीं करता।

हिदायत—हुसैन ! अभी तुम्हे बहुत कुछ सिखाने पढानेकी जरूरत है। अब तुम हमारे साथ आये हो। जरा अच्छी तरह सीख लो कि लडना किसे कहते है। आगे चलकर काम आयेगा।

हुसैन—बहुत बेहतर जनाब ! बडे बडे हाथी तो बह गये, अब देखना है कि ' मच्छर ' महाशय क्या करते है !

हिदायत—हुसैन ! मै देखता हूँ कि तुम बहुत गुस्ताख और बे-अदब होते जा रहे हो । तुम जानते नहीं, मै सिपहसालार हूँ । अगर चाहूँ तो अभी तुम्हारा सिर कटवा डालूँ । [जाता है ।]

हुसैन—जी हाँ जनाब ! मै जानता हूँ कि आप सिपहसालार है ।

हिदायत—हाँ, हमेशा याद रखना कि मै सिपहसालार हूँ ।

हुसैन—जी हाँ, मै हमेशा याद रक्खूँगा । लेकिन मेवाड़ फतह करना—

हिदायत—फिर वही मेवाड फतह करनेकी बात ! हुसैन, तुम मेरे दोस्त हो, इसी लिए मै तुमसे कहता हूँ कि मेरी नजरमें मेवाड फतह करना एक चुटकी बजाने जैसा काम है ।

हुसैन—यदि ऐसा है तो उसे एक बहुत बडी चुटकी कहनी चाहिए

हिदायत—नहीं, बहुत ज्यादा बडी नहीं है । अच्छा जाओ, अब हम खाना खाने जाते हैं । (हुसैन जाना चाहता है । हिदायत उसे फिर बुलाता है ।) हाँ हुसैन ! जरा एक बात सुनते जाना । देखो, हमेशा इस बातका ख्याल रखना कि हम सिपहसालार हैं ।

हुसैन—बहुत बेहतर जनाब ।

हिदायत—जाओ ।

[हुसैन जाता है ।]

हिदायत—भला इन काफिरोको जीतना क्या मुश्किल है ! इनके साथ तो लडनेकी भी नौबत न आवेगी । जहाँ तोपो और बन्दूकोंकी दो चार आवाजें हुई, सब भागते नजर आवेंगे । किसीका पता भी न लगेगा ।

[अकडते हुए प्रस्थान]

अजय—मानसी ! तुम्हारा जीवन धन्य है। मानसी ! आज मै तुमसे विदा होनेके लिए आया हूँ।

मानसी—क्यो ? तुम कहाँ जाओगे ?

अजय—युद्धमे।

मानसी—कब जाओगे ?

अजय—कल सवेरे।

मानसी—वहाँसे कब लौटोगे ?

अजय—कुछ ठीक नहीं। यह भी नहीं कह सकता कि लौटूँगा या नही।

मानसी—क्यो ?

अजय—सम्भव है कि युद्धमे मारा जाऊँ।

मानसी—ओह ! (सिर नीचा कर लेती है।)

अजय—मानसी ! यदि मै न लौटा तब ?

मानसी—तब फिर क्या होगा ?

अजय—तुम्हे दुःख होगा या नही ?

मानसी—होगा।

अजय—इतनी उदासीनता ! मानसी ! तुम जानती हो कि—

मानसी—मै क्या जानती हूँ ?

अजय—यह कि तुम पर मेरा कितना प्रेम है।

मानसी—हाँ, यह तो मैं जानती हूँ कि मुझ पर तुम्हारा बहुत प्रेम है।

अजय—क्या मुझ पर तुम्हारा प्रेम नही है ?

मानसी—है।

अजय—नहीं, तुम्हारा प्रेम किसी और पर है !

मानसी—है, मनुष्य-मात्र पर है ।

अजय—निठुर ! निर्दयी !

मानसी—क्यों अजय ! क्या तुम चाहते हो कि मै केवल तुम्हीं पर प्रेम करूँ और किसी पर प्रेम न करूँ ? क्या तुम अकले ही मेरे सारे हृदय पर अधिकार कर लेना चाहते हो ? तब तो तुम बड़े ही स्वार्थी जान पडते हो ।

अजय—मानसी ! क्या तुम अभी तक इतनी अनजान और अबोध हो ?

मानसी—तुम मुझसे नाराज क्यो होते हो अजय ? इसमे मेरा क्या अपराध है ? क्या मनुष्य मात्र पर प्रेम करना ही अपराध है ? यदि यही अपराध हो तो तुम मुझे उसका दण्ड दो । मै उसे भोगनेके लिए तैयार हूँ ।

अजय—तुम्हे दण्ड दूँगा—मै ?

मानसी—हॉ तुम दण्ड दो । अजय ! आज तुम युद्ध पर जा रहे हो । इस युद्धमे तुम जितनी ही अधिक हत्या करोगे, लोग उतनी ही अधिक तुम्हारी प्रशसा करेगे । उसी तरह मै जितना ही अधिक प्रेम करूँगी, क्या उतना ही अधिक मेरा अपराध होगा ?

अजय—मानसी ! तुम सारे ससार पर प्रेम करो, अपने उदार हृदयमे सारे विश्वको रख लो । अब मैं तुमसे कुछ न कहूँगा । मै बडा मूर्ख हूँ जो तुम्हारे आकाशके समान उदार हृदयको अपने तुच्छ और क्षुद्र हृदयमे बन्द कर रखना चाहता हूँ । मुझे क्षमा करो । मानसी ! अच्छा अब मै विदा होता हूँ ।

मानसी—अच्छा अजय ! जाओ । सारे जगत्में अन्याय और अत्याचार छाया हुआ है । उसे दूर करनेके लिए कभी कभी युद्ध करना अनिवार्य्य हुआ करता है । लेकिन युद्ध बडी ही निष्ठुरताका काम है । उसमे जहॉतक हो सके, अपने आपको पवित्र रखना ।

[अजयसिंह जाते है ।]

मानसी—जाओ अजय, तुम रण-क्षेत्रमे जाओ । मेरी शुभ-कामना कवचकी तरह तुम्हारी रक्षा करे । पर जो लोग युद्धमें मारे जायँगे, उनका क्या होगा ? क्या उनकी स्त्रियॉ, माताये और कन्याये भी ठीक इसी प्रकार भगवानसे उनके मगलके लिए प्रार्थना न करती होंगी ? न जाने उनमेसे कितनोकी प्रार्थनाये निष्फल होगी और कितनोकी साधनाये व्यर्थ होगी । क्या इसका कोई प्रतिविधान नहीं है ? (ऑखोंमे ऑसू भरकर आकाशकी ओर देखती है । थोडी देर बाद उसका मुख प्रसन्न हो जाता है और वह ताली बजाती हुई कहती है)— अच्छा, अब मै भी एक काम करूँगी । जो युद्धमे मरेगे उनकी तो मैं कोई सहायता न कर सकूँगी । पर हॉ, जो लोग घायल होंगे, उनकी सेवा शुश्रूषा करूँगी । बस, मै यही काम करूँगी । इसमें हर्ज ही क्या है ? मै यही करूँगी ।

[रानी रुक्मिणीका प्रवेश ।]

रानी—कुछ सुना मानसी ?

मानसी—क्या ?

रानी—तुम्हारे पिता युद्धमे गये है ।

मानसी—हॉ, सुना है ।

रानी—मुगलोके साथ युद्ध करने गये हैं !

मानसी—हॉं, सुना है ।

रानी—वाह ! किस उदासीनतासे तुम कह रही हो—‘ हाँ सुना है,’ मानो यह कोई मक्खन खानेके समान सुकोमल समाचार है। जानती हो, युद्धमें हजारों लोग मारे जाते है?

मानसी—हाँ, हो सकता है।

रानी—हो सकता है नहीं, होता है। इस बार बादशाहकी सेना-के साथ युद्ध होगा। अबकी बार सर्वस्व गया समझो। जो लोग युद्धमे गये है वे तो मारे ही जायँगे और जो लोग नहीं गये हैं, उनकी भी न जाने क्या दशा होगी।

मानसी—तब भला इसमे मै क्या करूँगी?

रानी—मैने तुम्हारे ब्याहकी बातचीत पक्की की थी। पर अब इधर ब्याहका समय न मिलेगा। ऐसी गडबडीमे कहीं ब्याह होता है?

मानसी—नही सही।

रानी—नहीं सही! यदि ब्याह न होगा तो क्या होगा?

मानसी—अच्छा ही होगा।

रानी—भला, यह भी कभी हो सकता है? लड़कियोंका ब्याह हुए बिना कहीं काम चल सकता है? जोधपुरके राजकुमारके साथ तुम्हारे ब्याहकी बातचीत पक्की की गई थी। पर अब ब्याह न हो सकेगा। सब जायँगे, सब मरेंगे। पहले ब्याह करके तब लडाई छेडते; पर राणाजीने मेरी बात ही न मानी।

मानसी—माँ, तुम चिन्ता न करो। मैने अपने लिए एक ब्याहसे भी बढ़कर काम करनेका निश्चय किया है।

रानी—वह क्या?

मानसी—मैं युद्धक्षेत्रमे जाऊँगी।

रानी—किस लिए?

मानसी—माँ, तुमने अभी कहा था न कि युद्धमे बहुतसे लोग मरते है ! जो लोग मर जायँगे उनकी तो मैं कुछ भी सहायता न कर सकूँगी, पर हाँ जो लोग घायल होगे, मै उनकी सेवा करूँगी।

रानी—बुरा हुआ ! जान पड़ता है, अजय तुम्हें यही बात सिखला गया है।

मानसी—नहीं, इसमे उनका कोई दोप नहीं है। अजय लोगोको मारने जाते है, पर मै रक्षा करने जाऊँगी।

रानी—नहीं। भला यह भी कहीं हो सकता है ?

मानसी—यह तो बहुत अच्छी तरह हो सकता है।

रानी—नहीं, तुम जाने न पाओगी।

मानसी—माँ, तुम निश्चिन्त रहो। मै अवश्य जाऊँगी। तुम तो जानती ही हो, कि जब मुझे कर्तव्य पुकारता है तब मै किसीकी बात नहीं सुनती। अब तुम जाओ। मै चलनेकी तैयारी करूँगी।

रानी—तुम किसके साथ जाओगी ?

मानसी—अजयसिंहकी सेनाके साथ।

रानी—जो सोचा था, वही हुआ। राणाजी भी इस समय चले गये। अब इसे कौन समझावे !

मानसी—यदि पिताजी यहाँ होते तो वे इस कामसे मुझे कभी न रोकते। मै उन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। वे बहुत दयालु है।

रानी—वे तुम्हे किसी बातके लिए मना नहीं करते थे, इसीसे तो तुम इतनी मनमानी करती हो। गया—सर्वस्व गया। मैं जानती हूँ, कोई न कोई भारी उपद्रव अवश्य होगा।

मानसी—माँ, तुम जरा भी चिन्ता न करो। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर अत्याचार करता है, जहाँ तक हो सकेगा मैं उस अत्या-

चारको कम करूँगी । माँ, अब तुम जाओ कोई चिन्ताकी बात नहीं है ।

रानी—अब पूरा पूरा कलियुग आगया ।

[रानी जाती है ।]

मानसी—यह इच्छा मेरे मनमे किसने उत्पन्न की ? पहले यह ज्योति मेरे अन्त करणके एक कोनेमे झिलमिला रही थी, पर अब हृदयमे उसका पूरा पूरा प्रकाश छा गया है । यह एक नया उत्साह है ! परम आनन्द है ! ब्याहका सुख इसके सामने क्या चीज है !

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—मेवाड, युद्धक्षेत्र । **समय**-सन्ध्या ।

[हिदायतअली एक खेमेमे बैठे हुए हुसैनसे बात कर रहे हैं । बाहर युद्धका कोलाहल हो रहा है । दरवाजे पर दो सिपाई नगी तलवार लिये खडे है ।]

हिदायत—हुसैन ! तुमने कुछ अन्दाज लगाया कि मेवाडकी फौज कितनी होगी !

हुसैन—करीब पचास हजारके होगी ।

हिदायत—हॉ ! ! ! , लेकिन राजपूत अभीतक भाग नही रहे है ।

हुसैन—जी नहीं जनाब ।

हिदायत—सुबहसे लड़ रहे है, मगर अभीतक भागते नजर नही आते ?

हुसैन—नहीं, उन्होने ठान लिया है कि लडेंगे और खूब जम कर लड़ेगे ।

हिदायत—मालूम होता है वे लोग कुछ कुछ लड़ना जानते हैं।

हुसैन—जी हॉ, कुछ आसार तो ऐसे ही नजर आते है।

हिदयत—यह तो राजपूतोकी ही आवाज आ रही है। हमारे सिपाही तो कुछ चिल्लाते-बिल्लाते ही नही। वे लड़ते तो है न ?

हुसैन—लडेगे क्यो नहीं ? जरा एक बार बाहर निकल कर आप ही क्यों नहीं देख लेते ? आप तो सिपहसालार है।

हिदायत—हॉं, मै सिपहसालार तो जरूर हूँ। मगर खेमेसे मेरे बाहर निकलनेकी जरूरत ही न पड़ेगी। मेरा साला इनायत खॉ अकेला ही इन लोगोके लिए काफी है। ये बेचारे मेरे साथ क्या लड़ेगे ?

हुसैन—हॉ जनाब, यह तो ठीक ही है। पर देखिए राजपूत लोग फिर गर्ज रहे है। यह लीजिए, फिर उन्हींकी आवाज आई। जनाब ! आसार तो अच्छे नजर नही आते।

हिदायत—जरा बाहर जाकर देखो तो सही कि क्या हो रहा है।

हुसैन—बहुत बेहतर।

हिदायत—मगर नहीं, तुम यहीं रहो। मुझे यह बहुत ही बुरी आदत पड गई है कि शामके बाद मै अकेला नहीं रह सकता हूँ।

हुसैन—हॉ, इसे खराब आदतके सिवा और कुछ कह ही क्या सकते है।

हिदायत—यह देखो, फिर शोर हो रहा है।

हुसैन—यह तो और भी नजदीक मालूम होता है।

हिदायत—क्या कहा ?

हुसैन—जनाब ! मालूम होता है, कोई इधर ही आ रहा है।

हिदायत—हैं ! कोई आता है ? (हुसैनको पकड लेता है।)

[एक सिपाई आता है ।]

हिदायत—क्या खबर लाये ?

सिपाही—खुदावन्द ! फौजदार शमशेरखाँ मारे गये ।

हिदायत—ऐ !

हुसैन—और बाकी दूसरे अफसर ?

सिपाही—लड रहे है ।

हिदायत—इनायतखाँ तो बचे हुए है न ?

सिपाही—जी हूजूर ।

हुसैन—अच्छा जाओ ।

[सिपाही जाता है ।]

हिदायत—सचमुच कोई खराबी हुआ चाहती है ।

हुसैन—जी हाँ हुजूर ! माळूम तो कुछ ऐसा ही होता है । उस रोज आप फरमाते थे कि मेवाड फतह करना चुटकी बजाने जैसा आसान काम है । पर अब तो आप समझ गये होंगे कि यह कैसा कठिन काम है । अब तो आपको इस बन्देकी बात ठीक माळूम होती है न ? यह लीजिए वे और भी नजदीक आ रहे है।

हिदायत—बेशक । इस लडाईमे क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता ।

हुसैन—जी हाँ जनाब, कुछ भी नहीं कहा जासकता ।

[दूसरा सिपाही आता है।]

हिदायत—क्या खबर है ?

सिपाही—हुजूर ! शाही फौजे बाई ओरसे भाग रही हैं।

हिदायत—क्यों ?

हुसैन—शायद यह शोर उन्हींका है ।

सिपाही—जी हाँ ।

[सिपाही जाता है ।]

हुसैन—जनाब सिपहसालार साहब ! आप जरा खेमेसे बाहर तो निकलिए । कमसे कम आपको देखकर सिपाहियों और अफसरोंकी हिम्मत तो बढ़ेगी । आप तो सिपहसालार हैं । जरा बाहर निकलिए ।

हिदायत—हाय ! मैं सिपहसालार हूँ ! (बहुत ही हताशासूचक सूरत बना लेता है ।)

[तीसरा सिपाही आता है ।]

सिपाही—खुदावन्द ! इनायतखाँ मारे गये !

हिदायत—ऐ ! यह क्या कह रहा है ? भला यह भी कभी मुमकिन है ? फिर राजपूतोंका शोर सुनाई पडता है । लो, ये तो बहुत ही नजदीक आ पहुँचे ।

हुसैन—जनाब आप एक बार बाहर निकलिए तो सही ।

हिदायत—अब वक्त ही कहाँ है ? यह सुनते हो ?

हुसैन—जी हाँ सुन रहा हूँ । शोर बराबर बढता ही जाता है । यह लीजिए, और भी नजदीक आ गया ।

(चौथा सिपाही आता है ।)

सिपाही—जनाब, सब चौपट हुआ ।

हिदायत—यह तो मैं पहले ही जानता था । और कुछ ?

हुसैन—और अब क्या होगा ? चौपट होनेके बाद और क्या हो सकता है ?

सिपाही—हुजूर सारी शाही फौजे भाग रही है और राजपूत बढते चले आ रहे है ।

हिदायत—हुसैन ! मालूम होता है दुश्मन आ पहुँचे ।

[नैपथ्यसे 'भागो भागो' सुन पडता है ।]

हिदायत---किस तरफ ?

हुसैन---इस तरफ ।

[हुसैन एक तरफ भागता है और हिदायत घबरा कर दूसरी तरफ दौड़ता है । इतनेमें उसे गोली लगती है और वह गिर पड़ता है । कई राजपूतोंके साथ मुगलोंका झण्डा हाथमें लिये हुए, अजयसिंह आते है ।]

अजयसिंह---जय ! मेवाड़के राणाकी जय !

सैनिक---जय ! मेवाड़के राणाकी जय !

हिदायत---(दोनो हाथ उठाकर) दोहाई ! मुझे न मारना । मै अभी जिन्दा हूँ । मुझे मारो मत, कैद कर लो ।

अजय---तुम कौन हो ?

हिदायत---मै शाही फौजका सिपहसालार हूँ ।

अजय---सिपहसालार ! इस वक्त लड़ाईका मैदान छोड़कर तुम खेमेमे क्यो पड़े थे ?

हिदायत---ऐं मै--ऐ--मै ? इसकी एक बड़ी माकूल वजह है । लेकिन इस वक्त याद नहीं आ रही है । तुम लोग मुझे मारो मत, मेरी जान बख्श दो ।

अजय---देखो, यह गीदड़ आया है मेवाड़ जीतने ! तुम डरो मत । तुम्हारी जान नही ली जायगी । सारे राजपूतानेमे मेवाड़-विजयकी घोषणा होने दो ।

हिदायत---हाँ, होने दो । इसमें मुझे कोई उज्र नहीं है ।

[अपने सैनिकोंके साथ अजयसिंह जाते है ।]

हिदायत---जान बची ! ! ! ! प्यास ! प्यास ! पानी ! पानी !

अन्य दृश्य ।

स्थान—युद्धक्षेत्र । **समय**—आधीरात ।

[जगह जगह मुरदों और घायलोंके ढेर लगे हुए हैं। कई सैनिकोंको साथ लिये हुए मानसी वहीं घूम रही है। किसी किसी सैनिकके हाथमें मशाल है ।]

मानसी—देखो कुछ लोग उधर जाओ। मैं इधर देखती हूँ।

[कई राजपूत सैनिक चले जाते हैं ।]

मानसी—ओह ! चारो ओर कितनी हत्या हुई है ! यह रोना और चिल्लाना ! कैसा करुण दृश्य है ! हे परमेश्वर ! क्या तुम्हारे राज्यमे यही नियम है कि मनुष्यको मनुष्य खाय ? क्या पृथ्वीमेसे कभी इस हिंसाका अन्त न होगा ? मनुष्य बे-रोक-टोक दूसरे मनुष्यकी हत्या करता है, और दयामय ! तुम चुपचाप खडे तमाशा देखते हो ! नीले आकाशको भेदकर सारे विश्वमे पापका विकट और भैरव विजय-हुँकार उठ रहा है, तब भी तुम उसका गला नहीं दबाते ! यह कैसा भीषण, करुण और मर्म्मभेदी दृश्य है ! ये मुरदोके ढेर ! देखे नहीं जाते ! यह घायलोकी चिल्लाहट ! सुनी नही जाती !

पहला घायल—हाय रे मरे !

मानसी—बताओ भाई तुम्हे कहाँ चोट लगी है ? आहा ! बेचारेको बड़ा कष्ट है !

प० घायल—यहाँ, यहाँ । माँ, तुम कौन हो ?

मानसी—चुप चाप पडे रहो, बोलो मत । (गोली लगे हुए स्थान पर पट्टी बाँधती है और एक सैनिकको इशारा करती है । वह एक कटोरी लाकर देता है । मानसी उस घायलसे कहती है)— कोई डरकी बात नहीं है, लो दवा पीओ । (वह घायल दवा पी लेता है । पास ही एक दूसरा घायल चिल्ला उठता है, तब उस दूसरे घायलके पास जाकर कहती है)—चुपचाप पडे

रहो। तुम्हारी शुश्रूषाका प्रबन्ध होता है। (एक राजपूत सैनिकको संकेत करती है। वह चला जाता है तब उस दूसरे घायलसे कहती है)—तुम चुप चाप पडे रहो, मै अभी आती हूँ।

तीसरा घायल—हे राम! अब तो प्राण निकल जायँ तो अच्छा हो। बडा दर्द है।

मानसी—(उस तीसरे घायलके पास जाती है और उसे देखकर कहती है) अभी तो इसमे प्राण है। (एक सैनिकसे) इसे देखो।

हिदायत—प्यास ! प्यास ! पानी ! पानी !

मानसी—(हिदायतके पास जाती है और एक सैनिकसे पानीका गिलास लेकर उसे देती हुई कहती है)—यह लो, पानी पीओ।

हिदायत—(पानी पीकर) या खुदा ! जान बची !

[कई सैनिकोंके साथ अजयसिंह आते है।]

अजय—इस अँधेरमे तुम कौन हो ?—मेवाडकी राजकन्या ?

मानसी—कौन ? अजय ?

अजय—(पास आकर) हाँ मानसी।

मानसी—अजय ! अपने सैनिकोंसे कहो कि वे घायलोकी सेवा करनेमें हमारी सहायता करे। हमारे आदमी कम है।

अजय—उन्हे क्या काम करना होगा ?

मानसी—वे घायलोको उठा उठा कर सेवा-शिबिरमे ले जायँगे।

अजय—बहुत ठीक। सैनिको ! इन घायलोको उठा ले चलनेका प्रबन्ध करो।

[सैनिक खटोले लेने चले जाते हैं।]

मानसी—कैसा आनन्द है अजय !

अजय—कैसी ज्योति है मानसी !

मानसी—कहाँ ?

अजय—तुम्हारे मुखपर !—विकट आर्तनादकी इस जन्म-भूमिमे, मृत्युके इस लीलाक्षेत्रमे, इस भयानक स्मशानमे, इस तारो भरी रातमे, यह कैसी ज्योति है ! तूफानमें लहरे मारते हुए समुद्र पर प्रभातके सूर्य्यकी तरह, घने काले मेघोंमे स्थिर नीले आकाशकी तरह, दु:खके ऊपर करुणाकी तरह—यह कैसी मूर्ति है ! यह सौन्दर्य्य ! यह गरिमा ! यह विस्मय! बडा ही अपूर्व है !—मानसी ! (हाथ पकड़ लेते है ।)

मानसी—अजय !

आठवाँ दृश्य।

स्थान—उदयपुरका राजपथ। **समय**—प्रभात।

[कई चारण गाते हुए आते हैं। पीछेसे अमरसिंह, गोविन्दसिंह, अजयसिंह और अन्यान्य सामन्तगण आते है।]

प्रभाती।

जागो जागो हे पुरनारी० ॥
समरहिं जीति अमर हैं आवत, रखि मरजाद तिहारी ॥
सूर्यवंशको नाश करन हित, आई सेना भारी।
गये जवन रंजित करि केवल, हमरी छुरी कटारी ॥
गर्व खर्व जवननको करिके, आवत हैं रनधारी।
दीप्त भई मेवाड़ भूमि है, गरिमा बढी हमारी ॥
है शुभ दिन मेवाड़ महीको नाचो दै दै तारी।
रहे खेत जो उन हित डारो, निज ऑखिनसों वारी ॥

दूसरा अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान–आगरेमें राजा सगरसिंहका घर ।

समय–सवेरा ।

[राजा सगरसिंह और उनके नाती अरुणसिंह बाते कर रहे हैं ।]

सगर—अरुण ! यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि अमरसिंहने देवारके युद्धमे मुगल-सेनाको घासकी तरह काट कर रख दिया !

अरुण—धन्य राणा अमरसिंह !

सगर—लडकपनमे अमरसिंह बडा गहरा शौकीन और खिलाड़ी था। यह कौन कह सकता था कि वह आगे चलकर ऐसा निकलेगा ।

अरुण—नानाजी ! महर्षि वाल्मीकि भी तो पहले डाकू थे ।

सगर—महर्षि वाल्मीकि कौन | तुलसीदासके लडके ?

अरुण—वाह! नानाजी, क्या आपने महर्षि वाल्मीकिका नाम नहीं सुना ? वे एक बडे भारी महर्षि थे ।

सगर—हाँ ! ऐसी बात ! खयाल तो नहीं आता कि कहीं उन्हें देखा हो ।

अरुण—आप देखेंगे कहाँसे ! वे तो त्रेतायुगमें हुए थे।

सगर—किस युगमें ?

अरुण—त्रेतायुगमे।

सगर—हाँ ! तब तो हमारे जनमके पहलेकी बात है। पर हाँ नाम सुना है। सुनते है, वे बडे रसिक थे।

अरुण—अजी नहीं ! उन्होंने तो रामायण लिखी है।

सगर—रामायण लिखी है! रामायण तो बहुत अच्छी किताब है।

अरुण—क्यो नानाजी ! आपने रामायण नहीं पढी ? भगवान् रामचन्द्र हम लोगोके पूर्व-पुरुष थे। उसमे उन्हींकी कथा लिखी गई है। आप उनके विषयमे कुछ नहीं जानते ? छीः !

सगर—बेटा, मै पढ़ूँ कहाँसे ? लड़ते लडते तो मेरा जनम बीत गया। मुझे पढनेका समय ही कहाँ मिला ?

अरुण—क्या आप भी कभी लडे थे ?

सगर—अह ! मै बडी बड़ी लड़ाइयाँ लडा हूँ। तब तुम्हारा जनम भी नहीं हुआ था।

अरुण—आप किसके साथ लडे थे ?

सगर—यह तो याद नहीं आता, पर हाँ इतना जरूर याद है कि मै कई बार युद्धमें गया था। उस समय तुम्हारी माँ—

अरुण—नानाजी मेरी माँ कहाँ है ?

सगर—यह कोई नहीं जानता कि वह कहाँ है। एक दिन सबेरे उठते ही वह 'मेवाड़ मेवाड' चिल्ला उठी। उसी दिन सन्ध्याके समय हम लोगोने बहुत ढूँढा, पर कहीं उसका पता नहीं लगा।

अरुण—और मेरे पिताजी ?

सगर—वह तो सदासे ही पागल सरीखा था । एक बार महाराज गजसिंहके साथ गुजरात पर चढ़ाई करने गया और वहीं मारा गया ।

अरुण—मै समझता हूँ कि मेरी माँ यही कहीं मेवाड़मे होगी ।

सगर—हो सकता है ।

अरुण—नानाजी ! आप मेवाड छोड कर यहाँ क्यो चले आये ? देखिए न, आपके भाई महाराणा प्रतापसिंहने अपने देशके लिए प्राण दे दिये ।

सगर—तभी तो बेचारे इतनी छोटी अवस्थामें ही मारे गये । मै उन्हे मना करता था; पर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी । भला बताओ, इसमे मेरा क्या दोष ?

अरुण—पर आज कल तो सुनते है, गली गली चारण और भाट उनकी कीर्ति गाते फिरते है ।

सगर—उँह । इससे क्या होता है ? वे तो मर गये ! अपनी जानसे तो गये ! अब वे स्वय तो अपनी कीर्ति सुनने नहीं आते ! मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार जब हम और प्रताप दोनों लड़के थे, एक नेवलेके संग साँपकी लड़ाई हो रही थी । मैंने कह दिया कि नेवला जीतेगा । पर प्रतापने मेरी बात नहीं मानी । साँपके माथे पर लक्ष्य करके नेवला कभी इधर झपटता था और कभी उधर । और साँप फुकार कर करके फन फटकारता था । अन्तमें हुआ यही कि नेवलेकी पकड साँपके सिर पर भरपूर बैठ गई और साँप उसी जगह सिर पटक पटक कर मर गया । भाई, नेवलेका तो काम ही है साँप-को मारना । साँप कब तक उसके सामने ठहर सकता है ? इसी लिए मैंने नेवलेका पक्ष लिया था; और प्रतापने लिया था साँपका [illegible] । इस वक्त भी वही बात है ।

अरुण—लेकिन नानाजी, इस देवारकी लड़ाईमें ?

सगर—भैया मेरे ! वह ठहरा रक्तबीजका वश, कहाँ तक काटोगे ? और फिर अगर मुसलमानोकी सख्या घट जाय तो वे बहुतसे हिन्दुओको मुसलमान बना लेगे और फिर लडेगे। पर हिन्दू तो उनकी तरह मुसलमानोंको हिन्दू बनायेंगे नहीं। मुसलमानोंका हिन्दू क्या करेगे ? जो लोग एक बार किसी तरह मुसलमान हो जाते हैं, उन्हे भी तो वे फिरसे किसी तरह हिन्दू नही बनाते। बस इसी जगह हिन्दू भूल करते हैं।

अरुण—कैसी भूल ?

सगर—देखो न, तुम्हारे मामा महाबतखाँ कितने सहजमे मुसलमान हो गये। जरा देखे तो कि इस तरह उनका अब्दुल्ला कैसे हिन्दू होता है। वह कभी हिन्दू हो ही नही सकता।

अरुण—नानाजी ! तब फिर आप भी मुसलमान क्यों न हो गये ?

सगर—यहीं तो तुम्हारे नानाजीकी हिम्मत नहीं पड़ी। मेरे लडकेमे बडा साहस था। उसने जरा भी पशोपेश नहीं किया। यह अवश्य है कि मैने पहलेहीसे उसका बहुतसा काम कर रक्खा था और उसका रास्ता साफ कर दिया था। अगर मैं साहस करके मुगलोंके पक्षमें न चला आता तो महाबतखाँको मुसलमान होनेकी हिम्मत न पडती।

अरुण—नानाजी ! आपको तो मुसलमान ही हो जाना चाहिए था। जिस हिन्दूने रामायण नहीं पढ़ी, उसे मुसलमान ही हो जाना चाहि"

सगर—उँह ! रामायणमें क्या रक्खा है ? सब चडूखानेकी गप्पें है।

[मुगल-सेनापति सैयद अब्दुल्लाका प्रवेश।]

सगर—अब्दुल्ला साहब ! आइए आदाब !

अब्दुल्ला—आदाब अर्ज, राणा साहब !

सगर—राणा कौन है ?

अब्दुल्ला—आप राणा है ।

सगर—भला मै कहाँका राणा ?

अब्दुल्ला—मेवाडके ।

सगर—सो कैसे ? मेवाड़के राणा तो अमरसिंह हैं ।

अब्दुल्ला—पर शाहशाह सलामतने अब तो आपको राणा बना दिया है ।

सगर—इसका क्या मतलब ?

अब्दुल्ला—उनका हुक्म है कि आप अभी चित्तौर चले जायँ ।

सगर—चित्तौर क्यो ?

अब्दुल्ला—वहीं आपकी राजधानी है ।

सगर—तब अमरसिंहकी राजधानी कहाँ रहेगी ? उदयपुरमें ?

अब्दुल्ला—वे तो अब राणा ही नहीं है। बादशाह सलामतने उन्हें गद्दीसे उतार दिया है ।

सगर—पर वे गद्दी कैसे छोडेंगे ?

अब्दुल्ला—उनसे जबर्दस्ती गद्दी छुड़ाई जायगी ।

सगर—क्या मुझे चल कर उनके साथ लडना पड़ेगा ? नहीं साहब, मैं राणा नहीं बनना चाहता ।

अरुण—क्यों, आप तो अभी कहते थे कि हम लड़ना–भिड़ना खूब जानते है और लड़ाई लड़ते लडते ही हमारा जनम बीत गया है । अब चलके लड़िए ।

सगर—चुप रह लडके, तुझसे कौन पूछता है ! (अब्दुल्लासे) नहीं, जनाब सैयद साहब ! मै लड भिड न सकूँगा। इसी लडने-भिड़नेके डरसे तो मैंने अपने आपको चुपचाप मुगलोंके सुपुर्द कर दिया है। और फिर अगर मुझे लड़ना ही होगा तो मैं अपने देशकी तरफसे न लडकर उलटे उस पर चढाई करने क्यो जाऊँगा ?

अब्दुल्ला—नहीं जनाब, आपको लडना भिडना नहीं पडेगा। और अगर लडनेकी जरूरत ही पड़ी तो हम लोग खुद लड लेंगे। आपको मेहरबानी करके सिर्फ राणा बनना पडेगा और चित्तौरमें रहना पडेगा।

सगर—और अगर अमरसिंहने चित्तौर पर चढाई कर दी तो ?

अब्दुल्ला—नहीं, वे चढाई न करेंगे। जब आज तक उन्होंने चढाई नहीं की, तो अब क्यों करेंगे ?

सगर—वाह सैयद साहब ! भला यह भी कोई दलील है ? कोई आदमी पहले कभी मरा नहीं, लेकिन क्या सिर्फ इसी लिए वह आगे भी कभी न मरेगा ? आपने जो उस दिन शादी की तो क्या आपकी शादी नहीं हुई ?

अब्दुल्ला—मै आपका मतलब नहीं समझा।

सगर—क्यो कि उससे पहले तो आपने कभी शादीकी ही नहीं थी। इस लिए क्या आपकी वह शादी शादी ही नहीं हुई ? भला यह भी कोई सबूत है ? (अरुणकी ओर देखकर) लडके, तू हँसता क्यों है ? (अब्दुल्लासे) साँपने अगर पहले कभी नहीं काटा तो क्या वह आगे भी कभी न काटेगा ?

अब्दुल्ला—जनाब ! आप बिगड़ते क्यों है ?

सगर—वाह साहब ! बिगड़ें नहीं ? आप बातें ही ऐसी करते है। माफ कीजिए। मैं राणा नहीं होना चाहता।

अब्दुल्ला——खैर साहब, आप बादशाह सलामतके हुजूरमें तो चलिए । आपको जो कुछ कहना हो, वह सब उन्हींकी खिदमतमे गुजारिश कीजिएगा ।

सगर——(अच्छा) चलिए जनाब ! लेकिन है यह बहुत ही बुरी कायरपनकी और नीचताकी बात । आप लोग मुझे अपनी मुट्ठीमें पाकर जबरदस्ती राणा बनाना चाहते है ! देखिए, क्या होता है। लेकिन यह है बड़ी ही ना-इन्साफी और अहसान फरामोशी ! चलो अरुण !

दूसरा दृश्य ।

स्थान——उदयपुरके राज-प्रासादका अन्त पुर ।

समय–प्रभात ।

[मानसी अकेली गाती है ।]

(विहाग ।)

दरसनसो पुलकित जग सारो० ॥
कोमल कर परसत ही तेरो
हुलसत हृदय हमारो ॥
शून्य लोक सब पुन्य भरित है
गुंजित हैं दिसि चारो ।
गगन मगन है बरसत मधु है
मधुकर मन मतवारो ॥
फूलत फूल विपिन है विकसित
नदियन नीर निहारो ।
सुधासार शतधा है टपकत
रवि शशिको उजियारो ॥
अरुन बरन है कमल बदन पुनि
केशदाम है कारो ।
लागो रहत देहमें मारुत
नित मलयागिर वारो ॥

कर सोहत फूलनकी माला
अधर माधुरी डारो।
नव वसन्तको भवन भव्य है
सुन्दर सुखद सँवारो॥

[अजयसिंह आते हैं।]

मानसी—कौन ? अजय ?

अजय—हाँ मानसी !

मानसी—तुम इतने दिनो तक क्यो नहीं आये ? क्या तुम्हारा जी अच्छा नहीं था ?

अजय—नहीं तो।

मानसी—मैने पिताजीसे तुम्हारे विषयमे पूछा था। क्या उन्होंने तुमसे कुछ कहा नहीं ?

अजय—नहीं मानसी ! तुम यहाँ अकेली क्यो हो ?

मानसी—मै गाती थी और सोचती थी।

अजय—क्या सोचती थीं ?

मानसी—यही सोचती थी कि मनुष्य बडा ही दीन है। मेवाडके युद्धमें मुझे यही एक सबसे बड़ी शिक्षा मिली कि मनुष्य बड़ा ही दुर्बल है। तलवारके एक ही वारसे वह जमीन पर गिर पड़ता है, जरा सा ज्वर आते ही वह बालकोंकी तरह असहाय हो जाता है। हाय ! जिसके रक्तमे ही मृत्युका बीज मिला हुआ है वह एक दूसरेसे प्रेम न करके परस्पर घृणा क्यों करता है ? अजय ! तुम टक लगाये मेरा मुँह क्यों देख रहे हो ?

अजय—तुम्हारे मुँह पर मै आज भी वही स्निग्ध ज्योति देख रहा हूँ जो मैंने उस दिन देखी थी।

मानसी—किस दिन ?

अजय—उस रातको—देवारके युद्धक्षेत्रमे। उस दिन वहाँ अँधेरेमें तुम मूर्तिमती दया ही जान पडती थीं। उसी दिन मेरा उन्मुख प्रेम असीम निराशाकी लम्बी साँसमे मिल गया।

मानसी—अजय ! निराशा कैसी ?

अजय—बतलाऊँ कैसी निराशा ? मैने सोचा कि तुम्हे पकडनेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। मैने समझ लिया कि तुम इस संसारकी स्त्री नहीं बल्कि स्वर्गकी देवी हो। तुम्हारे आत्माकी तीव्र ज्योतिको संसार सहन नहीं कर सकेगा, इस खयालसे ईश्वरने तुम्हारे इस सुन्दर शरीरको उसके ढँके रखनेके लिए आवरणस्वरूप बनाया है। आकाश रंगमंच होता, प्रत्येक नक्षत्र एक एक पवित्र चरित्र होता, चाँदनी एक निर्मल सगीत होती और उस महा नाटककी नायिका होतीं—तुम ! मै तुम्हारे साथ प्रेम करनेके योग्य नहीं हूँ। हाँ, मैं तुम्हारे प्रति भक्ति कर सकता हूँ। उस भक्तिके बदलेमे थोडीसी—बहुत ही थोडीसी तुम्हारी करुणा चाहता हूँ, क्या तुम मेरी इच्छा पूरी करोगी ? (अजयसिंह इतना कह कर मानसीका हाथ पकड लेते हैं। इतनेमें ही रानी वहाँ आ पहुँचती है।)

रानी—अजयसिंह !

[मानसीका हाथ छोडकर अजयसिंह पीछे हट जाते हैं।]

मानसी—क्या है माँ ?

रानी—अजय ! तुम्हे इस प्रकार एकान्तमे हमारी कन्याके साथ बातचीत न करनी चाहिए।

अजय—मैं क्षमा माँगता हूँ।

मानसी—अजय, क्षमा किस बातकी ?

रानी—याद रक्खो, तुम राजकन्या हो। जाओ, अन्दर जाओ।

[मानसी चली जाती है।]

रानी—अजय ! तुम गोविंदसिहके लडके हो। तुम्हें हम लोग घरके आदमियोंकी तरह ही समझते है। लेकिन तुम्हे अब इस बात-का ध्यान रखना चाहिए कि न तो मानसी ही अब निरी लडकी है और न तुम निरे लडके हो। अब इस बातका ध्यान रखकर मानसीसे मिला करो। हमारी समझमें तो अब इसके साथ तुम्हारा मिलना-जुलना ही ठीक नहीं है।

अजय—जो आज्ञा।

[अजयसिंह अभिवादन करके चले जाते है।]

रानी—खूब अच्छी तरह समझ लिया है। यदि अजयके साथ मेरी मानसाका ब्याह हो जाता तो बहुत अच्छा होता। लेकिन यह कभी हो सकता है ? नहीं ! हो ही नहीं सकता। (कुछ दृढ होकर) और जो बात हो ही नहीं सकती उसकी चिन्ता ही क्यों की जाय ?

[राणा अमरसिंह आते है।]

राणा—रानी !

रानी—महाराज ! मै आपके पास आना ही चाहती थी।

राणा—तुमने मानसीको कुछ कहा सुना है ?

रानी—नही तो। क्यों ? क्या हुआ ?

राणा—वह रो रही है।

रानी—(चकित हाकर) रो रही है ?

राणा—जाओ, देखो क्यों रोती है ?

रानी—पागल कहीकी ! मैंने रोनेकी कौनसी बात कही थी ? आप अपनी तो लडकीका हाल कुछ देखते नहीं, और वह स्वयं कुछ समझती नहीं। वह अभी थोड़ी ही देर पहले अजयसिंहके साथ—

राणा—खबरदार ! मानसीके सम्बन्धमें जरा सोच समझके बात किया करो । जानती हो, वह कौन है ?

रानी—कौन है ?

राणा—हम नहीं जानते कि वह कौन है ? हम तो अभी तक उसे पहचान ही नही सके । कोई नहीं कह सकता वह कौन है और कहाँसे आई है ।

रानी—लो ! इस तरह भी मेरी खराबी और उस तरह भी मेरी खराबी । जाऊँ, देखूँ, लडकी रोती क्यो है । बहुत तंग करती है ! (जाना चाहती है ।)

राणा—और देखो ।

[रानी लौट आती है ।]

राणा—देखो, आगेसे कभी मानसीको कुछ न कहना । स्वर्गकी एक किरण दया करके इस लोकमे उतर आई है । अगर तुम कुछ कहोगी तो वह रूठ करके चली जायगी । (रानी निराशा प्रकट करती हुई जाती है । राणा एक ऊँचे आसन पर बैठते है और आकाशकी ओर देखते हुए कहते है) यह जीवन भी एक स्वप्न है । यह आकाश कैसा नीला, स्वच्छ और गहरा है ! उसके नीचे अलस, उदार और मन्थर मेघ उड रहे हैं । प्रकृतिके जीवनमे समुद्रकी तरह लहरे उठती है और फिर बैठ जाती है । यह अलस सौन्दर्य्य कभी कभी बहुत ही भीम आकार धारण कर लेता है । आकाशमे बादल गरजते हैं । पृथ्वी पर जल बरसकर बह जाता है । और इसके बाद पहलेकी तरह सब शान्त और स्थिर हो जाते है ।

[गोविन्दसिंह आते है ।]

राणा—कौन ? गोविन्दसिंहजी ! कहिए, इस समय अचानक कैसे आये ?

गोविन्द—महाराज ! मेवाड पर फिरसे आक्रमण करनेके लिए मुगलोंकी नई सेना आई है ।

राणा—आ गई ? यह तो हम पहलेसे ही जानते थे कि केवल देवार-के युद्धसे इस युद्धकी समाप्ति नहीं होगी। मुगल सारा राजपूताना जब तक उजाड न देगे तब तक न मानेंगे।

गोविन्द—महाराज ! क्या कारण है कि अभी तक हम लोगोंकी ओरसे कुछ तैयारी नही हुई ?

राणा—क्यों ? तैयारीकी आवश्यकता ही क्या है ?

गोविन्द—क्या अब महाराज युद्ध न करेंगे ?

राणा—क्यो ? युद्ध करनेसे क्या होगा ?

गोविन्द—महाराज, तब तो मुगल आकर मेवाड पर तुरत ही अधिकार कर लेंगे।

राणा—जब उनका इतना आग्रह है तब फिर इसमे हर्ज ही क्या है ?

गोविन्द—क्या सचमुच महाराज युद्ध न करेंगे ?

राणा—नहीं। एक बार हुआ, हो गया।

गोविन्द—किसी प्रकारका उद्यम, प्रयत्न या प्रतिवाद किये बिना ही—

राणा—लेकिन इन सब बातोंकी आवश्यकता ही क्या है ? हमारी समझमें तो यह सब व्यर्थ होगा। देवारके युद्धमे हमारे प्राय: आधेसे अधिक सैनिक नष्ट हो चुके हैं। अब मुगलोंके साथ लडनेके लिए हमारे पास सेना ही कहाँ ?

[सत्यवती आती है ।]

सत्य०—महाराज, जमीन फोडकर सेना निकल आयगी! सेनाकी आप चिन्ता न करें।

राणा—कौन ?—चारणी?

सत्य०—हाँ महाराज! मै चारणी हूँ। मैने सुना है कि मुगल फिर मेवाड पर आक्रमण करने आये है। पर मै देखती हूँ कि मेवाड अभी तक निश्चिन्त और उदासीन है। मैने समझा कि कदाचित् अभीतक महाराजकी निद्रा भग नहीं हुई। इसीसे मै महाराजकी निद्रा भग करनेके लिए आई हूँ।

राणा—चारणी! अब हमारी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है। अबकी बार हम सन्धि करेगे।

सत्य०—यह क्यो महाराज? देवारके युद्धकी विजयके उपरान्त सन्धि क्यो? क्या महाराज उस गौरवके शिखरपरसे फिसल कर अपमानके गहरे गढेमे चले जायँगे?

राणा—चारणी! देवारकी विजयकी बात छोड दो। देवारमें हमारी जीत अवश्य हुई है, पर जानती हो, वह जीत किस प्रकार हुई है! उसमे हमारे लगभग आधे सैनिक मारे गये है। इतने वीरोंका रक्त बहा कर हमने वह विजय प्राप्त की है।

सत्य०—महाराज! यह कोई चिन्ता या दुःखकी बात नहीं है। वीरोका रक्त ही जातिको उर्वर करता है। जिस देशमें वीर मरते है, उस देशके लिए दुःख नहीं करना चाहिए, किन्तु दुःखी उन देशोंके लिए होना चाहिए जहाँ वीर नहीं मरते।

राणा—लेकिन हम तो देखते है कि यदि एक बार हमने और भी युद्ध किया, तो भी उसका कोई फल नहीं होगा। इस समरका कभी अन्त न होगा। इन मुट्ठीभर सैनिकोंको लेकर विश्व-विजयी दिल्ली-सम्राट्की सेनाके विरुद्ध खडे होना पूरा पूरा पागलपन है।

सत्य०—महाराज ! यदि इसको पागलपन कहते है तो भी इसका स्थान सारी विवेचनाओ, और सारे विचारोंसे बहुत ऊँचा है। समग्र विश्व इसी पागलपनके पैरो पर आकर लौटता है। स्वर्गसे एक गरिमा आकर इस पागलपनके माथे पर मुकुट पहनाती है। जिसे महाराज पागलपन कहते है, क्या उस पागलपनके बिना आजतक किसीने कोई बडा काम किया है ?

राणा—लेकिन इस युद्धका अन्तिम परिणाम निश्चित मृत्यु—

सत्य०—महाराज ! राणा प्रतापसिहके पुत्रके लिए यह समझना कठिन नहीं होगा कि अधीनता श्रेष्ठ है या मृत्यु। क्या मरनेके भयसे हम अपना रत्न डाकुओंके हाथमे सौप दे ? रत्नसे भी कहीं बढ़कर अपने इस सर्वस्व, पूर्व-पुरुषोके संचित और अनेक शताब्दियोंके स्मारकको क्या केवल प्राणके भयसे बिना युद्ध किये ही शत्रुके हाथमे सौप दें ? अगर वह लेना ही चाहता हो तो मर कट कर ले। और निश्चित मृत्युकी तो बात ही क्या ? वह क्या सभीको एक दिन न आयगी ? महाराज ! उठिए ! मुगल हमारे बिल्कुल पास आ पहुँचे है। अब स्वप्न देखनेका समय नहीं है।

राणा—चारणी ! तुम कौन हो ? तुम्हारे वाक्योमे गर्जन, तुम्हारे नेत्रोंमें बिजली, और तुम्हारी अग-भंगीमे आँधी है। सूर्य्यके समान प्रकाशमान्, जल-प्रपातके समान प्रबल, वज्रके समान भीषण, तुम कौन हो ? तुम केवल चारणी तो नहीं हो !

सत्य०—महाराज ! यदि आप पूछते ही हैं तो मैं बतलाये देती हूँ। अब मुझे अपने आपको छिपानेकी अधिक आवश्यकता नहीं है। मैं राणा प्रतापसिंहके भाई सगरसिंहकी कन्या सत्यवती हूँ।

राणा—हैं ! तुम राजा सगरसिंहकी कन्या हो !

सत्य०—महाराज ! यह परिचय देते हुए मेरा सिर लज्जासे झुका जाता है। तो भी पिताके पापोंका प्रायश्चित्त इस कन्यासे जहाँतक हो सकता है, वह करती है। मेरे पिता अपने भतीजेको सिंहासनसे उतारनेके लिए चित्तौरके दुर्गमें कल्पित राणा बनकर बैठे हुए हैं और मैं उन्हीकी कन्या होकर उन्हींके विरुद्ध मेवाड़-वासियोंको उत्तेजित करती फिरती हूँ। मैं लोगोको यह बतलाती फिरती हूँ कि सगरसिंह मेवाडके कोई नहीं है, वे केवल मुगलोके खरीदे हुए दास है। महाराज ! यह तो आप जानते ही होगे कि, आज तक मेवाडके किसी प्राणीने पिताको कर नहीं दिया।

राणा—हाँ बहन ! हमें मालूम है।

सत्य०—महाराज ! मेवाडके लिए मै अपना सुख, सम्भोग, पिता और पुत्र आदि सब कुछ छोडकर उसके जगलों और तराइयोंमें चारणी बनकर उसकी महिमा गाती फिरती हूँ। क्या आप मेरे उसी प्रिय मेवाड़को बिल्कुल तुच्छ और अनावश्यक पदार्थकी तरह नष्ट हो जाने देंगे ? (सत्यवतीकी आँखोंमे जल भर आता है, उसका गला रुँध जाता है, वह अपनी आँखें पोंछती है।)

राणा—शान्त होओ बहन ! तुम हमारी बहन और राजकन्या हो। तुम जिस देशके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर सकती हो उसके लिए उस देशका राजा तुम्हारा भाई भी अपने प्राण दे सकता है। गोविन्दसिंहजी ! युद्धके लिए प्रस्तुत हो जाइए और सेना तैयार कीजिए।

तीसरा दृश्य ।

स्थान—मेवाडमें सैयद अब्दुल्लाका डेरा । **समय**--रात ।

[अब्दुल्ला, हुसैन और हिदायत खॉ बातें कर रहे है ।]

अब्दुल्ला—इस मुल्कमे पहाड बहुत ज्यादा है ।

हिदायत—जी हाँ, जनाब ।

अब्दुल्ला—आपने जिस बार शिकस्त खाई थी, उस बार राजपूतोंने किस तरफसे चढाई की थी ?

हिदायत—मैने तो कभी शिकस्त नहीं खाई ।

अब्दुल्ला—आपने शिकस्त नहीं खाई ? दुश्मन आपको कैद कर ले गये और आप कहते है कि मैने शिकस्त नही खाई । और शिकस्त खाना किसे कहते है ?

हिदायत—वे मुझे कैद क्या करेगे ? मैने खुद अपने आपको चालाकीसे पकडवा दिया था ।

अब्दुल्ला—चालाकीसे अपने आपको पकडा देनेके क्या मानी ?

हुसैन—हाँ जनाब ! इन्होंने अपने आपको चालाकीहीसे पकडवा दिया था । जिस वक्त राजपूतोकी फौज सिर पर आ पहुँची उस वक्त हमारे सिपाहियोंने खूब सोच समझकर म्यानसे तलवार बाहर निकाली । इसके बाद उन्होंने अपने अपने बिस्तर पर एक तरफ म्यान और दूसरी तरफ तलवार रख ली । इसके बाद सब लोग बडे आरामसे अपनी अपनी मूँछोपर ताव देने लगे । उस वक्त खाना भी तैयार था । बिना खाना खाये कहीं जा न सकते थे । खाना खाया और कंघीसे बाल साफ करके फिर एक बार मूँछोंपर ताव दे लिया । उस वक्त मालूम हुआ कि राजपूतोकी फौज हमारे लश्करके दरवाजे पर आ पहुँची है । आखिर हमारे सिपाही लडनेके लिए निकले । लेकिन पहलेसे ही तलवार

और म्यान दोनों अलग अलग रक्खी हुई थीं। जल्दीमें घबडाकर तलवार लेना तो गये भूल, सबने अपने अपने हाथोंमें म्यानें ले लीं।

अब्दुल्ला—क्या यह गलती सभीसे हुई ?

हिदायत—जी हाँ जनाब! यह खुदाकी कुदरत है। इसमें किसीका दखल नहीं।

अब्दुल्ला—उन लोगोंको एक काम और करना चाहिए था।

हिदायत—वह क्या ?

अब्दुल्ला—खाना खानेके बाद मुनासिब था कि वे लोग एक तरफ तलवार और दूसरी तरफ म्यान रखकर एक नींद सो और लेते।

हिदायत—लेकिन दिक्कत तो इस बातकी थी कि दुश्मन सिर पर आ पहुँचे थे।

अब्दुल्ला—यह ठीक है। सोनेके लिए काफी वक्त ही नहीं था। खैर, तब आप लोगोंने क्या किया ?

हिदायत—तब हम लोग करते ही क्या ?

अब्दुल्ला—शायद यह कहा दिया होगा कि—"कैद कर लो, मगर जानसे मत मारो।"

हिदायत—नहीं, यह तो नहीं कहा था; मगर हाँ, इससे कुछ मिलता जुलता ही कहा था। क्या कहा था, कुछ ठीक याद नहीं।

अब्दुल्ला—खैर, कुछ भी हो, पर इसमें शक नहीं कि आपने ऐसी कोई खूबसूरत बात नहीं कही होगी जिसके भूल जानेसे उर्दू-साहित्यको कुछ नुकसान पहुँचा हो। गरज यह कि इसके बाद आपने अपने आपको गिरफ्तार करा दिया।

हिदायत—जी हाँ जनाब! आपने बहुत ही ठीक समझा। लेकिन मेरे गिरफ्तार होनेसे पहले ही एक बूढे राजपूतने गलतीसे किसी दूसरेके धोखेमें मुझपर गोली चला दी थी।

अब्दुल्ला—मैंने सुना इसके बाद ही राणाकी लड़की आपकी खिदमतके लिए आई थी।

हिदायत—जी हाँ। आखिर तो वह एक बहादुर सिपाहीकी लड़की थी। वह बहादुरो और सिपाहियोंकी कदर खूब जानती थी और तिस पर मेरा यह चेहरा जनाब! (हुसैनकी तरफ कनखियोंसे देखता हुआ इशारा करता है।)

हुसैन—बेशक आपका चेहरा तो काबिल तारीफके है!

अब्दुल्ला—इसी लिए शायद वह—

हिदायत—अब मै आपसे क्या अर्ज करूँ जनाब!

अब्दुल्ला—शायद वह बहुत ही हसीन थी!

हिदायत—ओफ! कुछ न पूछिए।

अब्दुल्ला—उसने आपसे क्या कहा?

हिदायत—अजी हजरत! मुझसे कुछ कहनेकी तो उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी। मालूम होता है, वह मुझे 'जान--मन' कहना चाहती थी। एक बार उसके मुहसे 'जा' तो बहुत ही साफ निकल आया था, और शायद 'न' का भी कुछ हिस्सा निकला ही चाहता था। मै 'शायद' इस लिए कहता हूँ कि झूठ बोलनेकी मेरी आदत बिल्कुल नहीं है। लेकिन मैंने कुछ इस अन्दाजसे उसकी तरफ देखा कि वह भी समझ गई कि इन पर मेरा जादू नहीं चल सकता। बस, वह कहते कहते ही रह गई--आगे कुछ कहनेकी उसकी हिम्मत ही न पड़ी।

अब्दुल्ला—तब उसके बाद क्या हुआ?

हुसैन—उसके बाद राणाने मारे खौफके सिपहसालार साहबको छोड दिया।

हिदायत—नहीं तो मै भी फिर उन्हे एक बार दिखला देता—हॉ ॉ ॉ !

अब्दुल्ला—बेशक ! हिदायत अली खॉं साहब ! आपकी बहादुरीमें तो शक नही ।

हिदायत—नही जनाब, मै कोई ऐसा बहुत बडा बहादुर तो नहीं हूँ । मगर फिर भी आप जानते है, यह सिपहगिरीका फन मैने बहुत दौलत खर्च करके सीखा है ।

अब्दुल्ला— (बातका रुख बदलकर) ओफ! रातके वक्त ये पहाड़ कैसे काले माळूम पडते है । माळूम होता है, इस मुल्कमे सब जगह पहाड ही पहाड है ।

हिदायत—सिर्फ पहाड ही नहीं बल्कि दो चार दरिया भी है, जनाब !

अब्दुल्ला—कल सुबह अच्छी तरह देखा जायगा ।

[कुछ दूर पर तोपका शब्द सुन पडता है ।]

अब्दुल्ला—(घबरा कर) यह क्या !

हिदायत—हुसैन—

हुसैन—जनाब ! माळूम होता है कि इस बार राजपूतोंने हमारा इन्तजार न करके खुद ही हम लोगोंपर हमला कर दिया है ।

अब्दुल्ला—हुसैन ! फौजसे तैयार होनेके लिए कहो !

चौथा दृश्य ।

स्थान—चित्तौरके दुर्गका भीतरी भाग । **समय**—रात ।

[एक पलग पर अरुणसिंह सोया है। दूसरा पलग
खाली पडा है । राजा सगरसिंह इधर
उधर टहल रहे हैं ।]

सगर—यह तो मानों इन लोगोंने चित्तौरके दुर्गमे मुझे एक प्रकारसे कैद ही कर रक्खा है। यह एक एक पुराना पत्थर और यह मान्धाताके समयका एक एक पुराना पेड मानो एक एक भूत मालूम होता है। रातको जब हवा चलती है, तब वह और भी भयावना हो जाता है और जब अन्धड चलता है, तब तो उसके भूत होनेमे कोई सन्देह ही नही रह जाता। जब अँधेरा हो जाता है तब तो वह बिल्कुल अलकतरेकी तरह काला मालूम होने लगता है। तारे तो कहीं दिखाई ही नहीं पडते। जो हो, यहाँ आनेसे इतना उपकार तो अवश्य हुआ कि एक बार रामायणका पाठ हो गया। बडी अच्छी पुस्तक है। एक लाभ यह भी हुआ कि चारणो और चारणियोंसे अपने पूर्वपुरुषोंकी बहुतसी कथायें सुन ली। वे थे तो बडे वीर, उनकी वीरतामे किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता। लेकिन आज मुझे न जाने क्यो कुछ भय लगता है। यह निर्जन दुर्ग ठहरा, तिस पर अधड चलता है। डर न लगे तो और क्या हो? पहरेदार! पहरेदार!

[पहरेदार आता है ।]

सगर—देखो, खूब होशियार रहना। कोई आने न पावे। बाबारे! यह क्या है?

पहरे०—कहाँ महाराज?

सगर—यही यही, सामने ! बापरे !

पहरे०—कुछ नहीं, अधड है ।

सगर—माळूम होता है, तुम्हारे देशमे अधड खूब चलता है ।

पहरे०—जी हाँ, महाराज !

सगर—अब तो महाराज बिना नींदके बे-मौत मरे ! क्यो जी, तुम्हारे देशमे अँधेरा भी बहुत होता है ?

पहरे०—जी हाँ, महाराज !

सगर—इतने अँधेरेके बिना हर्ज ही क्या था ! तुम जागते रहना और बाहर जरा रोशनी कर लो, जिसमे अँधेरा कुछ कम हो जाय । इतने अँधेरेमें मुझे नीद नही आती । और तुम लोग हाथमे नंगी तलवार लेकर चारो तरफ घूमते रहो । ज्यो ही कोई आवे त्यो ही उस पर एक हाथ ! पर देखो, कही भूलसे मेरी गर्दन पर ही हाथ साफ मत कर देना । जाओ ।

[पहरेदार जाता है ।]

सगर—देखो, अरुण पडा सोता है । इसकी नींद भी कैसी है ! अगर यह एकाध बार करवट बदले, कुछ हूँ हाँ करे, तो भी मै समझूँ कि यह जागता है । पर मुझे तो आज नींद ही नहीं आती । हमारे पुरखा इसी दुर्गमें रहते थे, इसीसे माळूम होता है कि वे बडे साहसी थे । पहरेदार !

[पहरेदार आता है ।]

सगर—जागते हो न ? देखो, सोना मत । और बीच बीचमे कुछ आवाज भी लगाते रहना जिसमें माळूम हो कि हाँ, तुम जागते हो । जाओ ।

[पहरेदार जाता है ।]

सगर—अरुण ! अरुण !

अरुण—हाँ, नानाजी !

सगर—अच्छा, अच्छा, सोओ । आज खूब खबरदारीसे सोना, मुझे डर लगता है ।

अरुण—डर काहेका ? आप सोइए न ! (करवट बदलता है ।)

सगर—अरे हाँ, तुम्हे क्या है । कहके छुट्टी पा गये । अरे, इधर यह क्या ? पहरेदार ! पहरेदार ! अरे सो गया ? ओ पहरेदार ! अरुण अरुण !

अरुण—क्या है नानाजी ! मालूम होता है, आज आप सोने नहीं देगे ।

सगर—सुनते हो, यह कौन बोल रहा है ?

अरुण—कोई नहीं, अन्धड चल रहा है । (करवट बदलता है ।)

सगर—अरे कहाँका अन्धड ! अन्धड भी कभी बोलता है ? वह तो बोलता है ! बापरे !

अरुण—क्या है नानाजी ?

सगर—भूत !

अरुण—कहाँ है भूत ?

सगर—वह देखो । (उँगलीसे इशारा करते है ।)

अरुण—कहाँ ? मुझे तो कही कुछ भी दिखाई नहीं पडता । मालूम होता है, आप जागते जागते स्वप्न देखते है ।

सगर—(कुछ दूरीपर लक्ष्य रखकर) मै तो आना ही नहीं चाहता था । उन्होने मुझे जबरदस्ती भेज दिया । ना भाई, मैं राणा नहीं बनता, राणा अमरसिंह ही है । मेरी जान मत मारो । मुझे छोड दो ।

अरुण—नानाजी !

सगर—अरे ये कौन है ? चित्तौरके राणा भीमसिंह ! जयमल ! प्रताप ! नहीं भाई, मैं कल ही यहाँसे चला जाऊँगा । इस तरहसे मेरी तरफ मत घूरो । ये कौन है ? ये कौन है ? मारो मत । मारो मत ।

(सगरसिंह चिल्ला कर गिर पडते है । अरुणसिंह उन्हें उठकर पकडता है । पहरेदार भी आ जाता है ।)

अरुण—पहरेदार ! पानी लाओ । नानाजी बे-होश हो गये हैं ।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयपुरके राजप्रासादका अन्तःपुर ।

समय—दो पहर ।

[मानसी और कल्याणी बातें कर रही हैं ।]

मानसी—कल्याणी ! मैंने यहाँपर एक कुष्टाश्रम स्थापित किया है। उसमे बहुतसे कोढी आकर रहने लगे है और बहुतसे आ रहे है। हाय, बेचारे कैसे दुःखी है !

कल्याणी—आपका जीवन धन्य है ।

मानसी—कल्याणी ! तुम मेरी प्रशसा करो, मेरे कार्यका अनुमोदन करो, मुझे उत्साह दिलाओ और मेरे हृदयको बलवान् बनाओ ।

कल्याणी—आपके इस काममे किसीने बाधा नहीं दी ?

मानसी—पिताजी तो कुछ नहीं कहते, पर हॉ और सब लोग कहते है कि राजकुमारीको ये सब बाते शोभा नहीं देतीं । मानो राजकुमारीको सुखी ही न होना चाहिए ।

कल्याणी—क्या इसमे कोई बहुत बड़ा सुख मिलता है ?

मानसी—कल्याणी! अवश्य ही बहुत बडा सुख मिलता है। दूस-रोंको सुखी करना ही वास्तविक सुख है। अपने आपको सुखी करनेकी चेष्टा प्राय व्यर्थ ही हुआ करती है। हिंस्र जन्तुओंकी तरह वह चेष्टा अपनी सन्तानको आप ही खा जाती है।

कल्याणी—भइया भी यही कहते थे। वे तो आपके शिष्य है न! वे प्राय: ही आपका नाम लिया करते है।

मानसी—क्या सचमुच ही वे मेरा नाम लिया करते है?

कल्याणी—बल्कि यो कहना चाहिए कि वे आपकी पूजा किया करते है। उन्होने ही मुझसे कहा है कि—"तुम बीच बीचमें मेरी आत्माके हरिद्वार तक जाकर तीर्थ-स्नान कर आया करो।"

मानसी—पर वे स्वयँ क्यो नही आते? तुम उनसे यहाँ आनेके लिए कहना। उन्हे—उन्हे देखनेके लिए मेरा बहुत जी चाहता है।

[एक दासी आती है।]

दासी—राजकुमारी! एक तसवीरवाली आई है।

मानसी—क्या वह तसवीरे बेचती है?

दासी—जी हाँ।

मानसी—अच्छा, उसे यहाँ ले आओ।

[दासी जाती है।]

मानसी—तुम्हारे भइया दिन भर क्या किया करते हैं?

कल्याणी—घरमें तो मैं उन्हें बहुत ही कम देखती हूँ। जब वे घर आते हैं तब पूछने पर कहा करते हैं—"अमुक रोगीकी सेवा करने गया था, अमुक दुखियाको धैर्य्य देने गया था।" बस ऐसे ही ऐसे काम बतलाया करते हैं।

[तसबीरवाली आती है ।]

मानसी—तुम तसबीर बेचती हो ?

तसबीर०—जी हाँ।

मानसी—जरा देखे, तुम्हारे पास कैसी कैसी तसबीरे हैं।

(तसबीरवाली तसबीर दिखलानेके लिए गठरी खोलती है। इसी बीचमें मानसी उससे पूछती है)—तुम्हारा मकान कहाँ है ?

तसबीर०—आगरे।

मानसी—क्या इतनी दूर तुम तसबीरे बेचनेके लिए ही आई हो ?

तसबीर०—जी हाँ, हम लोग इस कामके लिए सभी शहरोमे घूमा करती है।

मानसी—यह तसबीर किसकी है ?

तसबीर०—अकबर बादशाहकी।

कल्याणी—अकबर बादशाहकी ? लाओ देखे तो सही। (हाथमें लेकर) ओह कैसी तीव्र दृष्टि है!

मानसी—लेकिन उसमें कुछ स्नेह और दयाका भी अंश है। यह किसकी तसबीर है ?

तसबीर०—महाराजा मानसिंहकी।

कल्याणी—इनके चेहरेसे तो कुछ विषाद और कुछ निराशा झलकती है।

मानसी—हाँ, कुछ चिन्तित जान पडते हैं। पर देखती हो, उसके साथ कुछ आत्म-मर्य्यादा भी मिली हुई है! और यह किसकी है ?

तसबीर०—बादशाह जहाँगीरकी।

कल्याणी—मुँहसे कैसा दम्भ प्रकट होता है!

मानसी—साथमे कुछ दृढ-प्रतिज्ञता भी है। और यह किसकी तसवीर है ?

तसबीर०—मुगल सेनापति खानखाना हिदायत अली खाँकी। देखिए, कैसा सुन्दर चेहरा है !

[मानसी थोडी देर तक उसके चेहरेकी तरफ देखकर हँस पडती है।]

कल्याणी—आप हँसी क्यो ?

मानसी—देखो न कैसा मूर्ख जान पडता है ! चेहरेका रग-ढंग और भाव तो देखो ! क्या टेढे तिरछे सँवारे हुए बाल है ! और बीच-मे माँग ! औरतोकासा स्वाग बनाये हुए ! कैसा जगली, मूर्ख और अहकारी जान पडता है ! यह कौन है ?

तसबीर—महाबतखाँ।

मानसी—सेनापति महाबतखाँ ? देखूँ। (थोडी देर तक देख कर) प्रकृत वीरका मुँह है। कैसा ऊँचा ललाट है ! कैसी तीव्र दृष्टि है ! इतना तेज, इतनी दृढता, इतनी उदारता, और इतना आत्माभिमान, ये सब गुण प्राय· एक ही मनुष्यमे नहीं मिल सकते। क्यो कल्याणी ! इतने ध्यानसे क्या देख रही हो ?

कल्याणी—(सिर नीचा करके) कुछ नहीं।

मानसी—और ये तसबीरे किसकी है ?

तसबीर०—बादशाहके उमराओंकी।

मानसी—अच्छा, मै ये अकबर, जहाँगीर, मानसिंह और महाबतखाँकी तसबीरे लेती हूँ। इन सबका क्या दाम हुआ ?

तसबीर०—जो आप दे दे।

मानसी—(चार मोहरें देकर) ये लो।

तसबीर०—इन मोहरो पर राणा अमरसिंहकी ही मूर्ति है न ?

मानसी—हाँ ।

तसबीर०—यहाँ आपकी कोई तसबीर नही दिखाई पडती ।

मानसी—नहीं, मेरी कोई तसबीर नहीं है ।

तसबीर०—यदि आप आज्ञा दे तो मै एक तसबीर बना सकती हूँ।

मानसी—मेरी तसबीर ? क्यो ?

तसबीर०—ऐसा करुणापूर्ण मुख मैने आजतक कभी नहीं देखा। मै बहुत अच्छा चित्र तो नही बना सकती, पर तो भी आपका चित्र बना सकूँगी ।

मानसी—नहीं, कोई आवश्यकता नही है ।

तसबीर०—क्यो इसमे हर्ज ही क्या है ?

मानसी—नहीं, इसमे हर्ज है । अच्छा, अब तुम जाओ ।

तसबीर०—बहुत अच्छा, अब मै जाती हूँ ।

मानसी—जाओ ।

(तसबीरवाली चली जाती है ।)

मानसी—कल्याणी ! इतने ध्यानसे किसका चेहरा देख रही हो ?

कल्याणी—किसीका नहीं ।

(तसबीरोंको उलट पुलट कर मानसीके हाथमे देती है ।)

मानसी—इससे क्या होता है ! मैं वह तसबीर निकाल दूँगी। (चुन कर एक तसबीर कल्याणीको देती हुई) यही है न ? इसे लो। कल्याणी ! तुम इतनी लज्जा क्यो करती हो ? ये तो तुम्हारे पति हैं।

मानसी—(नीचा मुँह किये हुए) पर विधर्म्मी है ।

मानसी—तुम ऐसी बात कहती हो ? धर्म्म ? जिस प्रकार सब मनुष्य एक ही ईश्वरकी सतान हैं, उसी प्रकार सब धर्म्म भी एक ही धर्म्मकी सन्तान है । फिर भी न जाने क्यों उन सबमे इतना भ्रातृ-

विरोध है। संसारमें धर्म्मके नामपर जितना रक्तपात हुआ है, उतना कदाचित् और किसी बातके लिए नहीं हुआ।

कल्याणी—क्या उन पर प्रेम रखनेमे पाप नहीं है?

मानसी—प्रेम करनेमें पाप? जो जितना ही कुत्सित हो उसके साथ प्रेम करनेमे उतना ही पुण्य होता है। जो जितना ही घृणित हो वह उतना ही अधिक अनुकम्पाका पात्र है। सारे विश्वमे उसी एक अनादि सौन्दर्य्यकी किरण चमकती है। कोई ऐसा हृदय नही है जिसपर उस ज्योतिकी एक भी रेखा न पड़ी हो। तिसपर भी महाबत खाँ विधर्म्मी नहीं हैं, वे केवल मुसलमान है। वे यदि ईश्वरको 'ब्रह्म' न कह कर 'अल्लाह' कहते हैं, तो क्या इसी भाषाके भेदसे वे पापी हो गये?

कल्याणी—आजसे आप मेरी गुरानी हुईं।

मानसी—प्रेमके राज्यमें सुन्दर और कुरूपका, अच्छे और बुरेका विचार नहीं होता, उसमें जातिभेद नहीं है। प्रेमका राज्य पार्थिव नहीं है। उसका निवास-स्थान प्रभातके उज्ज्वल आकाशमें है। प्रेम किसी प्रकारके बन्धन या रुकावटको नहीं मानता। वह एक स्वच्छ और स्वयं-विकसित सौन्दर्य्य है। मृत्युके ऊपर एक विजयी आत्माकी तरह, और ब्रह्माण्डके विवर्तन पर महाकालकी तरह वह संगीत अमर है।—कल्याणी क्या देख रही हो?

[कल्याणी जो अब तक चुपचाप आश्चर्यसे मानसीका मुँह निहार रही थी, मानसीका अचानक प्रश्न सुनकर मानों स्वप्नसे जाग उठती है।]

कल्याणी—राजकुमारी! आपका हृदय भी एक संगीत—(कुछ रुक कर) कृपा कर आज मुझे आज्ञा दीजिए। यदि अनुमति हो तो मै कल फिर आऊँगी।

मानसी—अच्छा, जाओ कल्याणी । लेकिन कल जरूर आना और अजयसे भी आनेके लिए कहना ।

[कल्याणी—चली जाती है । उसके चले जानेपर मानसी गाती है ।]

विहाग ।

अद्भुत प्रेमको व्योहार ।
प्रेम किये नर परवश होवे,
पर पै निज अधिकार ॥ अ० ॥
प्रेम लिये नहिं बिगरत कछु है,
दिये नाहिं संहार ।
प्रेमहिसों रविशशी उगत हैं,
फूलत फूल हजार ॥
पौन चलत प्रेमहिको गावत
पछी जय-जय-कार ।
नभसों सागर मिलत और नभ
सागर मिलत अपार ॥
प्रेमहिसों पाथर हू पिघलत
बहत नदीकी धार ।
सरग लोक पृथिवी पै उतरत,
पृथी चढ़त सुरद्वार ॥
प्रेमगीत गूँजत नभ, छाई
प्रेमकिरन संसार ।
प्रेमी बनहु वेग अब प्यारे
प्रेम जगतको सार ॥

[रानी आती है ।]

रानी—मानसी !

मानसी—क्यों माँ !

रानी—तुम्हारे पिताजी तुम्हे बुलाते है।

मानसी—क्यो ? क्या काम है ?

रानी—तुम्हारे ब्याहके लिए दिन ठीक करना है, इसीसे तुमसे कुछ पूछना चाहते है। मेरी बात तो उन्होने मानी ही नहीं।

मानसी—मेरा ब्याह ?

रानी—हाँ, जोधपुरके राजकुमार यशवन्तसिहके साथ तुम्हारे ब्याह-की बातचीत पक्की हुई है। ब्याहका दिन ठीक करनेके लिए जोधपुर-महाराजके पास आदमी भेजा जा रहा है।

[मानसी रो पडती है।]

रानी—क्यों ? यह क्या ? रोती क्यो हो ?

मानसी—नहीं, रोती नही हूँ। मै ब्याह नही करूँगी।

रानी—ब्याह नहीं करोगी ? यह क्यो ?

मानसी—मै परिणयके बन्धनमे अपने जीवनको बाँध कर नही रक्खूँगी। मेरे प्रेमकी परिधि उससे कही बडी है।

रानी—ऐसा कहीं होता है बेटी ! कुमारी रहकर क्या कहीं जीवन बिताया जा सकता है ?

मानसी—क्यो नही बिताया जा सकता ? बालविधवायें ब्रह्मचर्य्य पालन कर सकती है, और बालिका कुमारी ब्रह्मचर्य्यका पालन नही कर सकती ? मै ब्रह्मचारिणी रहूँगी। मै पिताजीसे जा कर कहे आती हूँ।

[मानसी चली जाती है।]

रानी—यह क्या ? लडकी कहीं पागल तो नहीं हो गई ! पागल न हो तो क्या हो ? वे तो कुछ कहते ही नहीं है। मुझे पहले ही डर था—लो, वे स्वय ही आ रहे हैं। आज मै उन्हे अच्छी तरह दो चार बाते सुनाऊँगी।

[राणा आते है ।]

राणा—मानसी कहाँ है ?

रानी—वह आपके पास नही गई ? जान पडता है वह कुछ पागल हो गई है ।

राणा—पागल हो गई है ?

रानी—और क्या । कहती है मै व्याह नही करूँगी । ब्रह्मचारिणी बनूँगी ।

राणा—ठीक है, समझ लिया ।

रानी—मै कहती थी कि लडकी पर कुछ डाँट-डपट रखिए, पर आपने नही सुना । उसीका यह सब फल है ।

राणा—जान पड़ता है, तुम कुछ भी समझती बूझती नही ।

रानी—मै खूब समझती हूँ । वह पागल हो गई है ।

राणा—यदि ऐसा पागलपन तुम्हे होता, तो मैं तुम्हे सोनेके सिंहासन पर बैठा कर पूजता ।

रानी—लो और सुनो ! बाप-बेटी दोनोकी एक दशा !

राणा—रानी ! हम भी उसे बहुत अच्छी तरह पहचानते हो, सो भी नहीं है, तो भी इतना समझते हैं कि वह कोई स्वर्गीय पदार्थ है ।

रानी—वह यदि—

राणा—नही, उसके विषयमे तुम कुछ भी मत कहो । देखती रहो, चुपचाप देखती ही रहो ।

[राणा जाते है ।]

रानी—देख लिया । मानसीका यह पागलपन पैतृक है । अब मेरा भविष्य बहुत अच्छा नहीं जान पड़ता ।

[रानी जाती है ।]

छठा दृश्य ।

स्थान—गोविन्दसिंहका घर । **समय**–दोपहर ।

[दीवार पर एक तसबीर टँगी है । थोडी दूर पर
हाथमें फूलोंका गुच्छा लिये हुए कल्याणी
उस तसबीरकी ओर देख रही है ।]

कल्याणी—प्यारे ! मेरे प्रियतम ! मेरे यौवन निकुजके पिक ! मेरी सुषुप्तिके सुख-जागरण ! मेरी जागृतिके सोनेके स्वप्न ! तुमने मेरे जगत्को नये रगमे रँग डाला है, मेरे सामान्य जीवनको रहस्य-मय बना दिया है। तुम प्रभातके सूर्य्य हो—तुमने मेरे हृदयकी अँधेरी कन्दरामे प्रवेश किया है। तुम मेरे हृदयके राजा हो,—तुमने मेरे हृदयके सिंहासन पर अधिकार किया है । तुम आशा हो,--तुमने मेरे जीवनकी निराशाको सिर उठा कर देखना सिखाया है । तुम सदा मधुर सदा नवीन हो । तुम मेरे स्वामी हो, मेरे देवता हो, मेरे सारे जीवनकी तपस्या हो । (अपने हाथके फूल उस चित्र पर चढाती है । इतनेहीमे गोविन्दसिंह वहाँ पहुँचकर उसका वह पूजन देखते है ।)

गोविन्द०—(गम्भीर स्वरसे) कल्याणी !

कल्याणी—(फिर कर) पिताजी !

गोविन्द०—यह चित्र किसका है ?

कल्याणी—(सिर झुकाकर) मेरे पतिका ।

गोविन्द०—तुम्हारा पति कौन ? महाबतखाँ ?

कल्याणी—हाँ ।

गोविन्द०—यह चित्र यहाँ कैसे आया ?

कल्याणी—पूजा करनेके लिए मैने इसे आज ही यहाँ लाकर टाँगा है ।

गोविन्द०—पूजा करनेके लिए?

कल्याणी—हाँ, पिताजी, पूजा करनेके लिए। आप क्रोध न कीजिए। क्या यह कोई अपराधकी बात है? (गोविन्दसिंहके पैरों पड जाती है।)

गोविन्द०—महाबतखाँ तुम्हारा कौन है?

कल्याणी—(उठकर) वे मेरे पति है।

गोविन्द०—लेकिन मै तो तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि तुम्हारे कोई पति नहीं है?

कल्याणी—पहले तो मै भी यही समझती थी, पर अब मुझे मालूम हुआ है कि नहीं, मेरे पति है।

गोविन्द०—पति है? विधर्म्मी महाबतखाँ तुम्हारा पति है?

कल्याणी—पिताजी! मै न तो धर्म्म जानती हूँ और न आचार जानती हूँ। मै केवल इतना जानती हूँ कि इन्हींके साथ मेरा विवाह हुआ था। उसी विवाहबन्धनसे, ईश्वरको साक्षी देकर, हम दोनों उस दिन एक हुए थे। भला उस बन्धनको कौन तोड़ सकता है?

गोविन्द०—क्या महाबतखाँने मुसलमान होकर वह बन्धन स्वयं नहीं तोड डाला?

कल्याणी—नहीं, क्योंकि मुसलमान होने पर भी उन्होंने मुझे ग्रहण करना चाहा था।

गोविन्द०—तुम्हें ग्रहण करना चाहा था? यवन होनेके उपरान्त गोविन्दसिंहकी कन्याको ग्रहण करना या न करना महाबताखाँकी इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर है? कल्याणी! जिस दिन महाबतखाँ हिन्दूधर्म्म छोड कर मुसलमान हुए थे, उसी दिन उन्होंने तुम्हारा परित्याग कर दिया था।

कल्याणी——नहीं, उन्होंने मेरा परित्याग नहीं किया था।

गोविन्द०——क्या कहती हो ? उन्होने तुम्हारा परित्याग नहीं किया ? क्या अभी तक तुम्हारे अपमानकी मात्रा पूरी नहीं हुई ?—अच्छा तो सुनो। क्या तुमने महाबतखाँको कोई पत्र लिखा था ?

कल्याणी——हाँ लिखा था।

[अजयसिंह आते हैं।)

गोविन्द०——हा अदृष्ट ! (माथा ठोककर) महाबतने वह पत्र लौटा दिया है और उसपर लिख दिया है--' कल्याणी ! मैं तुम्हे ग्रहण नहीं कर सकता।' क्या तुमसे इतना अपमान कराये बिना नहीं रहा जाता था ? लो, यह वह पत्र है।

(गोविन्दसिंह हाथसे पत्र फेंक देते है। कल्याणी उस पत्रको उठा कर बडी उत्सुकतासे देखने लगती है।)

गोविन्द०——क्यो अजय, वह खबर ठीक है न ?

अजय०——हाँ, पिताजी, बिल्कुल ठीक है। मुगल फिर मेवाड पर आक्रमण करने आये है।

गोविन्द०——इस बार सेनापति कौन है ?

अजय०——शाहजादा परवेज।

गोविन्द०——सेना कितनी है ?

अजय०——लगभग एक लाख।

गोविन्द०——अबकी बार सब नष्ट हो जायगा, कुछ भी न बचेगा। मेवाड़में जो कुछ थोडे बहुत प्राण बचे थे, वे भी निकल जायँगे। क्यों कल्याणी, तुम सिर क्यों नीचा किये हो ?

कल्याणी——क्या कहूँ पिताजी।

गोविन्द०——क्या अब भी महाबतखाँ तुम्हारा पति है ?

कल्याणी—हाँ, अवश्य। जो पति अपनी स्त्रीका आदर करता है, उसकी तो सभी स्त्रियाँ पूजा करती हैं। वास्तविक साध्वी वही है जो अपने पतिके उन्ही पैरोंकी पूजा करती है जिनसे वह उसे मारता है। जिसकी पतिभक्तिका वियोग होने पर क्षय नहीं होता, अवज्ञा या अपमान होनेपर सकोच नहीं होता, पतिके निष्ठुरता दिखाने पर ह्रास नहीं होता, निराशा होनेपर भी जिसमे क्षोभ नहीं होता; जिसकी पति-भक्ति अन्धकारमे चन्द्रमाके समान शान्त, आँधीमे पर्वतके समान दृढ और घूमनेमे ध्रुवतारेके समान स्थिर हो, जिसकी पतिभक्ति सब अवसरो पर, सब अवस्थाओमे, विश्वासके समान स्वच्छ, करुणाके समान अयाचित और मातृस्नेहके समान निरपेक्ष हो, वही सच्ची साध्वी है। वे मेरे स्वामी है, पति है, देवता है, चाहे वे मुझे अपनी चरण-सेवामें रक्खे चाहे न रक्खे, मेरे लिए दोनो बातें बराबर हैं।

गोविन्द०—दोनों बराबर है?—कल्याणी! तुम मेरी कन्या हो न?

कल्याणी—हाँ पिताजी! मै आपकी कन्या हूँ। मैं आपका गौरव कभी नष्ट नहीं करूँगी। पिताजी! आज मै एक बड़ी भारी गरिमाका अनुभव कर रही हूँ। आज मुझे यह दिखानेका बडा भारी सुयोग मिला है कि मै उनकी साध्वी स्त्री हूँ। आपने जिस प्रकार अपने देशके लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है उसी प्रकार आज मैं भी उस महा आनन्दमय उत्सर्गके पथपर चल रही हूँ।—अब मुझे कौन रोक सकता है? (आवेशके कारण कल्याणीका स्वर काँपने लगता है।)

गोविन्द०—उत्सर्ग! तुम अपनी इस कुलटा-प्रवृत्तिको उत्सर्ग कहती हो!

अजय०—पिताजी! आप जो कुछ कहें वह सोच समझ कर कहें। आप नहीं जानते कि आप क्रोधमें आकर क्या कह रहे हैं।

और नहीं तो मैं नही समझता कि जो भाव अति उच्च, अति सुन्दर और अति पवित्र है उसे आप इतना कुत्सित क्यो समझ रहे है ।

कल्याणी—(गर्वसे) भइया, तुम मेरे सच्चे भाई हो !

गोविन्द०—अजय ! मैं एक सौ बार कह चुका हूँ कि कल्याणीके पति नहीं है !—वह विधवा हो चुकी है !

कल्याणी—और मैं भी एक सौ बार यह कहनेके लिए तैयार हूँ कि जीवनमें, मरणमे, सदा वे ही मेरे पति है ।

गोविन्द—महाबतखाँ और तुम्हारा पति ?—ऐसा घृणित, नीच, अधमाधम—

कल्याणी—पिताजी ! ध्यान रखिए, आपके लिए घृणित होनेपर भी वे मेरे लिए पूज्य हैं ।

गोविन्द—पूज्य ? वह जाति-द्रोही विधर्म्मी महाबतखाँ गोविन्द-सिंहकी कन्याका पूज्य है ?—हा दुर्भाग्य !

कल्याणी—(स्थिर स्वरसे) पिताजी ! मै पिताको नहीं जानती, जातिको नहीं जानती, धर्म्मको नहीं जानती । मेरा धर्म पति है । शास्त्रकारोंने इससे बढ कर स्त्रीके लिए और कोई धर्म्म नहीं लिखा । पिताजी ! स्त्री जब एक बार कूद पडती है, तब फिर वहाँ चाहे अमृतका समुद्र हो, और चाहे विषका हो, वहीं उसका जीवन होता है और वहीं उसका मरण होता है, वहीं उसका इह-काल है और वही उसका पर-काल है । वे चाहे हिन्दू हो और चाहे मुसलमान, चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक, अब तो वे और मै दोनो, एक ही पथके पथिक है । इसके लिए यदि मुझे उनके साथ नरकमें भी जाना पडे तो मैं वहाँ जानेके लिए तैयार हूँ ।

गोविन्द०—अच्छी बात है, तब तुम जासकती हो। जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाओ। आजसे मै तुम्हारा परित्याग करता हूँ।

अजय०—यह क्या! पिताजी, आप क्या कर रहे हैं! कल्याणी आपकी कन्या—

गोविन्द०—नही, वह मेरी कन्या नहीं है। जाओ, कल्याणी! तुम अपने पतिके पास जाओ।

कल्याणी—पिताजी! आपकी आज्ञा सिर-आँखो पर है। अच्छा तो अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिए।

[कल्याणी गोविन्दसिंहको प्रणाम करती है।]

अजय०—पिताजी! कुछ सोच समझ लीजिए। इस प्रकार अन्याय न कीजिए। कल्याणी स्त्री है। यदि वह भूल करे, अपराध करे, तो भी उसे क्षमा करना चाहिए।

गोविन्द०—बेटा! कल्याणी नरकमें जाना चाहती है। जाय! मैं उसे रोकना नहीं चाहता।

अजय०—पिताजी! उसके लिए वह नरक नहीं है। जहाँ प्रेमका पुण्यप्रकाश है, वहीं सच्चा स्वर्ग है। जल्दीमें इस रत्नको खो न दीजिए। आप नहीं समझते कि आप क्या कर रहे है।

गोविन्द०—अजय, मैं बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। कल्याणी! जो भीतरसे देशका शत्रु हो, मेरे घरमें उसके लिए स्थान नहीं है। यदि तुम्हारा धर्म्म 'पति' है तो हमारा धर्म्म 'देश' है। जाओ।

[गोविन्दसिंह पीठ फेर लेते हैं।]

कल्याणी—जो आज्ञा पिताजी!

[कल्याणी जानेके लिए तैयार होती है।]

अजय०—ठहरो कल्याणी! पिताजी! तब आप मुझे भी जानेकी आज्ञा दीजिए।

गोविन्द०—(सामने मुँह करके) यह क्यों अजय?

अजय०—मैं इस अबला बालिकाको अकेले नहीं जाने दूँगा। मै भी इसके साथ जाऊँगा।

गोविन्द०—लेकिन अजय, तुम्हें तो मैने घरसे बाहर जानेके लिए नहीं कहा।

अजय०—पिताजी! मैंने भी उसकी अपेक्षा नहीं रक्खी। कल्याणी स्त्री है। आप उसे उसके पुण्यके कारण घरसे निकाल देते है और हिंस्र मनुष्योसे भरे हुए संसारमें अकेले छोड देते है। यदि इस समय उसका पति यहाँ होता तो वह उसकी रक्षा करता। इस समय पति यहाँ नहीं है, उसका भाई है। वही उसकी रक्षा करेगा। आओ कल्याणी! आज हम भाई-बहन दोनों अपनी नाव इस विक्षुब्ध संसार-सागरमें छोड़ते हैं। देखो, किनारे लगते है या नहीं! पिताजी प्रणाम!

[अजयसिंह प्रणाम करते है।]

[अजयसिंह अपने साथ कल्याणीको ले कर वहाँसे चले जाते है। गोविन्दसिंह पत्थरकी मूरतकी तरह जहाँके तहाँ खडे रह जाते है।]

सातवाँ दृश्य।

स्थान—चित्तौरके पासका एक जगल। **समय**—सध्या।

[सगरसिंह और अरुणसिंह एक वृक्षके नीचे खडे हुए है। दूर एक पहाडकी दूसरी ओर सूर्य्य अस्त हो रहा है।]

सगर०—इस राज्यमे रहनेकी मेरी तो जरा भी इच्छा नहीं है। चित्तौरका किला तो एक तरहका जेलखाना है;—पुराना, डरावना और

अँधेरा, और तिसपर चारों तरफ पहाड़ और पेड़; आदमीका तो कही नाम भी नहीं है। इतने बडे और पुराने पेड़ भी मैने कहीं नहीं देखे। अरुण! मै तो अब आगरे लौट जाऊँगा!

अरुण०—नानाजी! मुझे तो यह जगह बहुत अच्छी लगती है। यहाँके प्रत्येक पहाडके साथ हमारे पूर्व-पुरुषोकी स्मृति सम्बद्ध है। क्या प्राचीन कालके गौरवकी कथा आपको अच्छी नहीं लगती?

सगर०—लो, फिर वही प्राचीन गौरवका रोना ले आया! अरे जो बीत गया सो बीत गया, उसके लिए वृथा माथा-पच्ची न किया कर।

अरुण०—लेकिन नानाजी, मुझे तो वर्तमानकी अपेक्षा अतीत ही बहुत अच्छा माळूम होता है। वर्तमान बहुत ही तीव्र और स्पष्ट होता है, पर अतीत प्रायः ढँका हुआ और अस्पष्ट होता है। अतीत मानों नीलिमाके समान, उपन्यासके समान, स्वप्नके समान होता है।

सगर०—लो, मै जिस बातसे डरता था वही हुई। तुम ज्यो ज्यों बडे होते जाते हो त्यों त्यों अपनी माँके ही ढँग सीखते जाते हो। वह भी ऐसी ही बाते किया करती थी। बस इसी तरहकी बातें करते करते ही वह घरसे बाहर निकल गई और फिर किसीको पता भी न लगा कि कहाँ चली गई।

अरुण०—मेरी माँ इसी तरहकी बातें किया करती थी?

सगर०...हाँ। और ये ही सब बाते उसके लिए काल हुई। वह 'मेवाड,' 'मेवाड़' करती हुई ही पागल हो गई, और घरसे निकल गई।

अरुण०—मैं उसे ढूँढ कर लाऊँगा।

सगर०—इस जगलमेंसे? अरे बेटा, इस जगलमें अगर सूरज डूबा होता तो उसका भी ढूँढ निकालना महा कठिन होता। तुम्हारी माँ तो माँ ही है।

अरुण०—नहीं नानाजी! अब मै आगरे नहीं जाऊँगा। आपको जाना हो तो आप जाइए। मुझे यह जगह बहुत अच्छी लगती है और फिर जब मेरी माँ इस देशमे है, तब तो यही मेरा घर है। आगरेमें तो मैं इतने दिन मानों निर्वासित था।

सगर०—मुझे पहले ही इस बातका डर था। मालूम होता है तुमने आगरेमें बादशाहका सफेद पत्थरवाला महल नही देखा है। चलो, अबकी तुम्हे वह दिखलावेंगे।

अरुण०—नहीं, मै कुछ नहीं देखना चाहता। मुझे तो यह निर्जन वन ही उससे कहीं अच्छा जान पडता है।

सगर०—आगरेमें ७८ मसजिदे हैं। सब एकसे एक बढिया, नई और झकाझक!

अरुण०—नानाजी! मुझे तो सैकडो ऊँची ऊँची सोनेकी मसजिदोसे बढकर अपने देशका एक टूटा हुआ मन्दिर ही बहुत अच्छा मालूम होता है। मुगलोंके पैरोके पास बैठकर राजभोग खानेकी अपेक्षा अपनी दीना माताकी गोदमे बैठकर साग--सत्तू खाना कहीं अच्छा है। नानाजी! क्या आप यही भीख माँगकर खानेके लिए अपना देश छोडकर, अपना भाई छोड़कर और सैकडों पुण्य-कथाओंवाला अपना घर छोडकर दूसरोके दरवाजे गये थे? वे यदि नित्य मुट्ठी भर सोना भी आपको भीखमें दें, तो भी उसके साथ उनके पैरोंकी धूल मिली रहेगी। वे जब आपकी ओर देखकर हँसते है, तब मै देखता हूँ, उस हँसीके नीचे घृणा भी झलकती रहती है। नानाजी! मै तो परायेके दिये हुए सोनेके भण्डारसे अपने भाईके खाली हँसनेको भी कहीं अधिक उत्तम समझता हूँ।

[सत्यवती आती है।]

सत्य०—जीते रहो बेटा!

सगर०—कौन? सत्यवती? क्या मै स्वप्न देखता हूँ! नहीं, यह तो सत्यवती ही है! सत्यवती! तुम यहाँ कैसे आ गई बेटी!

सत्य०—बेटा, जिस दिन मै स्वदेशके लिए सन्यास लेकर घरसे बाहर निकलने लगी थी उस दिन तुम्हारे छोटे छोटे दोनों हाथोंका बन्धन छुडाकर चलना ही मेरे लिए सबसे अधिक कठिन हुआ था। जब मै इन पहाडोके किनारे किनारे मेवाडकी महिमा गाती फिरती थी, तब तुम्हारी हँसीको भूलना ही मुझे सबसे अधिक कठिन जान पडता था। जब मैने सुना कि तुम यहाँ आये हो, तब मुझसे न रहा गया। मै तुरन्त ही दौडी हुई तुम्हें देखनेके लिए यहाँ चली आई। इतनी देर तक मैं ओटसे तुम्हारी अमृतभरी बातें सुनती थी। मै सोचती थी कि क्या ऐसी स्वर्गीय बाते भी इसी पृथ्वीपर हो सकती है! अन्तमें मुझसे नहीं रहा गया!—मेरे लाल! मेरे सर्वस्व!

[सत्यवती हाथ बढाती है।]

सगर०—बेटी सत्यवती! मेरी ओर तो तूने एक बार भी नहीं देखा। मैंने क्या कोई अपराध किया है?

सत्य०—अपराध? क्या आप अपना अपराध नहीं जानते? नहीं, कदाचित् उसके समझनेकी शक्ति ही आपमे नहीं है। आप अपनी इस दीना, हीना और दुखिया जननी जन्म-भूमिको छोड कर मुगलोके प्रसाद-भोगी बने है। आप उन्हीं मुगलोके दास हुए हैं जिन्होंने हमारे मन्दिरो और तीर्थोंको नष्ट और अपवित्र किया है, जिन्होंने यहाँकी स्त्रीजातिको लाञ्छित किया है और जिन्होंने यहाँके पुरुषोको मनुष्यत्व-हीन बना दिया है। जो मुगल दर्पसे फूलकर—गर्वोन्मत्त होकर राजपूतानेके बाकी बचे हुए स्वाधीन राज्य मेवाड़ पर बार बार आक्रमण

कर रहे हैं, जो उसकी हरियालीपरसे उसीकी सन्तानके रक्तकी नदियाँ बहा रहे हैं, आप उन्हीं मुगलोंकी शरणमें पडे है । आप उन्हीं मुगलोंकी कृपासे अपने भतीजे, राणा प्रतापसिंहके पुत्रको सिंहासनसे उतारनेके लिए तैयार हुए हैं। और तिस पर भी आप पूछते हैं कि मेरा क्या अपराध है ? जाइए, पिताजी ! आपने अपने लिए अलग रास्ता पसन्द किया है और हम लोगोंका रास्ता अलग है । आओ बेटा ! इस अन्धकार, इस दुर्दिनमे तुम्हीं मेरे सह-यात्री हो । आज मेरे हृदयमें दूना बल आ गया है । आओ बेटा, चले ।—

[अरुणको साथ लेकर जाना चाहती है ।]

सगर०—नहीं नहीं, सत्यवती ! ठहरो । अरुण ! तुम भी मत जाओ । बल्कि नहीं, मैं भी तुम्हीं लोगोके साथ चलूँगा । आज मेरी आँखे खुली हैं ! आज मैंने अपनी मातृभूमिको पहचाना है । आजसे मैंने पराई कृपाकी आशा अपने हृदयसे निकाल कर फेक दी । आजसे मैंने अपने देशके साथ दरिद्रता, दुःख और उपवास ग्रहण किया । आओ बेटी, तुम्हें अपने गलेसे लगालूँ ।

सत्य०—यह क्या पिताजी ! क्या आज मेरा इतना बडा भाग्य होगा कि मैं एक ही समयमें, एक ही साथ, अपने पिता और पुत्रको प्राप्त करूँगी ! क्या आप जो कुछ कह रहे है वह सत्य है ? बिल्कुल सत्य है ?

सगर०—हाँ सत्यवती ! यह सत्य है, बिलकुल सत्य है । पहले ये सब बातें मेरी समझमें नहीं आती थीं । तुम मुझे क्षमा करो । क्षमा करो ।

सत्य०—पिताजी ! पिताजी !

[सत्यवती घुटने टेक कर अपने पिताके सामने बैठ जाती है और उनके पैरों पर अपना सिर रख देती है ।]

तीसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान–उदयपुरकी राजसभा। **समय**–प्रभात।

[सामन्त लोग खडे हुए बाते कर रहे है।]

जयसिंह—यह कामनेरका युद्ध इतिहासके पृष्ठोमें सोनेसे लिख रखनेके योग्य है।

गोकुलसिंह—परवेजकी रसद आनेका मार्ग बद कर देना बडी बुद्धिमत्ताका काम हुआ।

भूपति—मालूम होता है, वे लोग यह जगली रास्ता नहीं जानते थे।

गोकुल०—लेकिन भागनेका रास्ता खूब जानते थे।

जय०—आज मेवाडका गौरवमय प्रभात है। देखो, कैसे नवीन प्रकाशसे मेवाड़के सारे पहाड चमक रहे हैं।

भूपति—यह सुन्दर पवन सारे भारतमें इस विजय-समाचारको फैला दे।

[राणा अमरसिंह आते हैं।]

सब लोग—जय राणा अमरसिंहकी जय।

[राणा सिंहासन पर बैठते है ।]

राजकवि किशोरदास आते है और राणाकी विजयका गीत गाते हैं।

आसावरी।

वीर महीपति नरपति जय जय।
रविकुल-रवि तुम भारत-रक्षक,
काँपत शत्रु सदा तुम्हरे भय।
प्रगटै गगन प्रताप प्रबल तव,
होहि सदा प्रभु रिपु-दल-बल छय।

राणा—किशोरदास, तुम अपने गीतमें एकचरण और जोड दो।

किशो०—जो आज्ञा महाराज!

राणा०—'तुम्हरे कारन जैहै सर्वस, करि हौ तुम निज-कुल-कीरति क्षय।'

किशोर०—यह क्यो महाराज?

राणा०—(कुछ हँसकर) क्यो? पूछते क्यो हो—देख लो।

[सत्यवती आती है।]

सत्य०—मेवाडके राणाकी जय हो।

राणा०—कौन? बहन सत्यवती?

[राणा सिंहासनसे उतर कर उसकी अभ्यर्थना करते हैं।]

राणा—आओ बहन!

सत्य०—महाराज! मैं इतनी देरतक बाहर खडी ख[illegible]का विजय-गीत सुनती थी। सुनते सुनते आँखोमे आनन्दाश्रु [illegible]। मैं मन्त्र-मुग्ध[illegible]तरह चुपचाप खडी सुनने लगी। लका[illegible]के उपरान्त महारा[illegible]पुरुष भगवान रामचन्दके अयोध्या-प्रवेशकी बात मुझे याद आ[illegible]के बाद गीत बद हो गया। मालूम हुआ कि

मानो कोई देवी आकर अपनी आभामे आवृत करके उसे अपने स्वर्ग-राज्यमे उडा ले गई। उस समय मै मानो स्वप्नसे जाग उठी।

राणा—सत्यवती! गीत इसी प्रकार थम जाता है। सभी गीत एक प्रकारके आनन्द-कोलाहलके समान आरम्भ होते है और अतमें एक गहरी सॉसमे मिल जाते है।

सत्य०—यह क्यो महाराज! इस आनन्दके दिन आप इतने निरानन्द और विरस क्यो है? महाराज! आप अपने हृदयसे इस निराशाको निकाल कर दूर कर दीजिए। आज मेवाड़का बहुत ही गौरवमय दिन है।

राणा—गौरवका दिन तो कहा ही जाता है। सत्यवती, एक नई बात सुनोगी? कामनेरका युद्ध हमने नहीं जीता है।

सत्य०—तब और किसने जीता है? क्या मुगलोंने जीता है?

राणा—नही, राजपूतोने जीता है। लेकिन हम लोगोंने—जो लोग यहॉ विजयोत्सव मना रहे है, उन लोगोने—यह युद्ध नही जीता है। जिन लोगोने इस युद्धमे विजय प्राप्त की है वे सब युद्ध-क्षेत्रमें पडे है। सत्यवती! वास्तवमे वे लोग युद्धमे विजय नही प्राप्त करते जो युद्ध-क्षेत्रसे निशान उडाते हुए, डका बजाते हुए और जयध्वनि करते हुए लौटते है। वास्तवमे विजय वे ही प्राप्त करते है जो उस युद्धमे मारे जाते है।

सत्यवती—महाराज, यह बिलकुल सच है। ईश्वर करे, उन लोगोकी कीर्ति अक्षय हो। महाराज! मै एक शुभसंवाद सुनाना चाहती हूँ।

राणा—सत्यवती! वह कौनसा सवाद है?

सत्य०—महाराज! मेरे पिता राणा सगरसिंहने आपके लिए चित्तौर दुर्ग छोड दिया है। आप बे-रोकटोक जाकर उस दुर्ग पर अधिकार कर ले।

राणा—चित्तौर-दुर्ग हमारे लिए छोड दिया है! सत्यवती! यह तुम क्या कह रही हो! क्या यह बात ठीक है? ऐसा कहीं हो सकता है!

सत्य०—हाँ महाराज! यह बात बहुत ही ठीक है।

राणा—उन्होने अचानक हमारे लिए वह दुर्ग क्यो छोड दिया? क्या बादशाहने उन्हे ऐसा करनेकी आज्ञा दी थी?

सत्य०—नहीं महाराज, उन्होने बादशाहकी आज्ञासे ऐसा नहीं किया। बादशाहने उन्हें चित्तौरका किला दे दिया था। उन्हें इस बातका अधिकार था कि वे जिसे चाहें उसे वह किला दे दें। अत: वे प्रसन्नतापूर्वक वह किला आपको देकर आगरे चले गये है।

राणा—सामन्तो! जयध्वनि करो। स्वर्गीय पिताजीके जीवनका स्वप्न आज सफल हुआ,—उनके पुत्रके बाहुबलसे नहीं बल्कि उनके भाईके दानसे। चलो, दुर्गपर अधिकार करो, नई सेना सुसज्जित करो; आगे बढो, आक्रमण करो, और अन्तपर्यन्त युद्ध करो।

सत्य०—जय! राणा अमरसिंहकी जय!

सामन्तगण जय! राणा अमरसिंहकी जय!

दूसरा दृश्य।

स्थान—गाँवके बाहर एक पगडडीके पास छोटीसी टूटी फूटी कुटी।

समय—सन्ध्या।

[कल्याणीके साथ अजयसिंह उसी पगडडीसे चले आ रहे हैं।]

कल्याणी—भइया, अब तो नहीं चला जाता।

अजय—आज हम लोग इसी गाँवमें ठहरेंगे। गाँवके बाहर ही यह कुटी है। जान पडता है कोई दूकान है। दरवाजा नहीं है, भीतर अन्धकार है।

कल्याणी—जरा आवाज दे देखो।

अजय—कोई है? भीतर कोई है? यहाँ तो कोई बोलता ही नहीं। माळूम होता है यहाँ कोई रहता ही नहीं है।

कल्याणी—आज हम लोग यहीं रहें। अब तो चला नहीं जाता।

अजय०—अच्छी बात है। तुम यहीं थोडी देर तक ठहरो। मैं जाकर गाँवसे दीआ ले आता हूँ।

कल्याणी—जाओ, मै तो अब एक पग भी नहीं चल सकती हूँ। भइया! मुझे बडी भूख लगी है।

अजय—मै कुछ खानेके लिए भी ले आऊँगा। तुम यहीं ठहर जाओ।

कल्याणी—जल्दी आना भइया! मै अकेली हूँ, डर लगता है।

अजय—मै बहुत जल्दी आऊँगा। और यहाँ डर ही काहेका है? यहाँ कोई है भी तो नहीं। (जाता है।)

कल्याणी—आजतक मै कभी पैदल चली नहीं, इसीसे चलते चलते दोनो पैर लहू-लुहान हो गये है। पर इसीमे मुझे बडा आनन्द मिलता है। अपनी इच्छासे इस दुःख और दरिद्रताको स्वीकार करनेमे ही मुझे असीम अभिमान हो रहा है। नदी जिस प्रकार बिना किसी तरहकी रुकावटके लहरें मारती हुई समुद्रकी ओर बढती जाती है, उसी प्रकार मै भी आनन्दपूर्वक अपने सर्वस्व—अपने स्वामी—के पास जा रही हूँ। पर मुझे यह भी नहीं माळूम कि वे दासीरूपसे भी मुझे अपने चरणोंमें स्थान देंगे या नहीं।—कौन?

[फकीरके भेसमें सगरसिंहका प्रवेश ।]

सगर०—बेटी, मै एक राजपूत हूँ । तुम किसी प्रकारका भय मत करो। मै देखता हूँ तुम भी राजपूत स्त्री हो । तुम यहाँ अकेली क्यों हो?

कल्याणी—मेरे भइया एक दीआ और कुछ खानेको लानेके लिए इसी गाँवमें गये हैं ।

सगर—अच्छी बात है । जब तक वे लौट कर न आ जायँगे तब तक मैं यही रहूँगा । इस स्थान पर मुसलमान सैनिकोका उपद्रव बढ रहा है। उनमेंके चार पाँच आदमियोंको मैने अभी यहीं पास ही देखा था । जब तक तुम्हारे भइया लौट कर न आवेगे तब तक मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ।

कल्याणी—आप यहीं ठहर कर मेरी रक्षा कीजिए !—मुझे डर लगता है ।

नैपथ्यमें—इसी टूटे घरमे ?

नैपथ्यमे—हाँ, यहीं । (कोई किवाड खटखटाता है ।)

कल्याणी—कौन ?--भइया ! भइया !

[तीन डाकू भीतर घुस आते हैं ।]

पहला डाकू—यही है ! यही है !

दूसरा डाकू—पकडो !

(पहला डाकू कल्याणीको पकडना चाहता है कल्याणी दूर हटकर चिल्लाती है)-" मुझे बचाओ, बचाओ । "

सगर०—(आगे बढकर) खबरदार !

पहला डाकू—यह कौन ?

दूसरा डाकू—जो हो, पहले इसीको मारो ।

[सगरसिंह डाकुओंसे लडने लगते हैं और लडते लडते गिर पडते है ।]

कल्याणी—भइया ! भइया !

[अजयसिंह आ पहुँचते हैं ।]

अजय०—कल्याणी ! डरो मत। मै आ गया। (अजयसिंह तलवार निकालकर डाकुओं पर वार करते हैं और उन्हें जमीन पर गिरा देते हैं।)

अजय०—इन सबको तो मैने खतम किया। ये कौन हैं ?

कल्याणी—ये मेरी रक्षा करने आये थे, सो इन्हें चोट आगई है।

सगर०—तुम कौन हो ?

अजय०—मै सेनापति गोविंदसिहका पुत्र अजयसिंह हूँ और यह मेरी बहन कल्याणी है।

सगर०—कौन ? महाब्रतखाँकी स्त्री कल्याणी ?

अजय०—हाँ वीरवर ! आप कौन है ?

सगर०—मैं उसी महाब्रतखाँका पिता, सगरसिंह हूँ।

तीसरा दृश्य ।

स्थान—जोधपुरके महाराज गजसिंहका राजमहल ।

समय—प्रभात ।

[मारवाडपति गजसिंह, पारिषद हरिदास, गजसिंहके पुत्र अमरसिंह और दूतके वेशमे अरुणसिंह ।]

गजसिंह—दूत ! मेवाडके महाराणाजीसे कह दो कि हम इस विवाहसे सहमत नहीं हो सकते। जो लोग सम्राट्के विद्रोही हैं हम उनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध रखना नहीं चाहते। क्यों जी हरिदास ?

हरिदास—जी महाराज, बहुत ठीक ! अवश्य ऐसा ही होना चाहिए।

अरुण०—महाराज ! हमारे महाराणा विद्रोही कैसे हुए? मेवाड तो अभी तक मुगलोंके अधीन ही नहीं हुआ। जिस स्वाधीनताकी वह इतने दिनोंमे रक्षा करता आ रहा है उस स्वाधीनताकी रक्षा करनेके प्रयत्नका नाम तो विद्रोह नहीं हो सकता।

गज०—नही, इसीका नाम विद्रोह है। ऐसी दशामें जब कि सारा राजपूताना सिर झुका कर मुगलोकी प्रभुता स्वीकार करता है, अकेला मेवाड क्यों कर सिर उठाये रहेगा?

अरुण०—मै समझ गया। महाराजके मनमे ईर्ष्या हो रही हे। सब पर्वतोके शिखरोंपरसे गौरवकी किरणे उतर गई है, केवल मेवाडके पर्वतोको वे किरणे घेर रही है,—इसीको महाराज सहन नही कर सकते। सारे राजपूत राजाओंके सिर नगे हैं, केवल मेवाडके राणाका मुकुट उनके मस्तकको सुशोभित कर रहा है, यह दृश्य अवश्य ही महाराजकी आंखोका कांटा हो सकता है। लेकिन महाराज ! इस गौरवसे महाराणाजीने तो आपको वंचित नहीं किया है, आप लोगोने स्वयं ही अपने आपको उससे वंचित किया है। इसमें राणाजीका कोई दोप नही है।

गज०—दूत ! तुम बडे साहसी और धृष्ट हो। महाराज गजसिंहके सामने ऐसी बाते और कोई नहीं कह सकता। राणा यदि ऐसे ही मूढ उद्धत और उन्मत्त हो जो वे समझते हो कि हम केवल बीस हजार राजपूतोको ले कर ही भारतसम्राटका मुकाबला करेंगे, तो यह उन्मत्तता उन्हींको शोभा देगी।

अरुण०—महाराजका कहना यथार्थ है। यह उन्मत्तता उन्हींको शोभा देती है। इस प्रकार उन्मत्त होनेकी शक्ति आपमे नहीं है। आपने जो कुछ कहा है वह बहुत ही ठीक है।

गज०—दूत ! तुम अवध्य हो, नहीं तो—

अरुण०—खैर, इतनी मनुष्यता तो आपमे है। पर महाराज ! भला, यह बात आपने कहाँसे सीखी कि दूत अवध्य है ! आपके मुखसे इतनी बडी नीति, इतनी बडी बात, कैसे निकली !

गज०—दूत ! हमारे धैर्य्यकी भी कोई सीमा है। जाओ और राणासे कह दो कि हम यह विवाह नही करना चाहते। जाओ—

अरुण०—महाराज ! मै जाता हूँ। पर एक बात कहे जाता हूँ। मैने सुना है कि आपने दक्षिणमें बादशाहकी ओरसे अनेक युद्ध किये है, आपने गुजरात भी जीता है। मै समझता हूँ कि इस बार आप मेवाड भी आवेगे। इसके लिए मै आपको निमत्रण दिये जाता हूँ।

[अरुणसिंह जाना चाहते है।]

गज०—अच्छी बात है। ऐसा ही सही। लेकिन दूत, ठहरो। तुम भी हमारे साथ ही चलना।

अरुण०—क्या आप मुझे कैद करेगे ?

गज०—हाँ !—अमर ! इसे कैद कर लो।

अमर०—यह क्यो पिताजी ! यह तो दूत है ! दूत पर अत्याचार करना क्षत्रियोका धर्म्म नही है।

गज०—अमरसिह ! मै तुम्हारे पास धर्म्माधर्म्म नही सीखना चाहता, तुम मेरी आज्ञाका पालन करो।

अमर०—पिताजी ! मै इस अन्यायपूर्ण आज्ञाका पालन नहीं कर सकता।

गज०—(बिगड कर) क्या तुम मेरी आज्ञाका पालन नहीं कर सकते ? उद्धत बालक ! सुनो, तुम मेरे सबसे बड़े पुत्र हो। पर यदि

तुम मेरी बात नहीं मानते तो भविष्यमें यह राज्य तुम्हें नहीं मिलेगा। सिंहासन मेरे छोटे पुत्र यशोवन्तसिंहका होगा।

अमर०—आप अपना राज्य रखिए। मुगलोंके पैरोंकी ठोकरों और करुणासे आपका जो सिंहासन बना है, उस सिंहासनपर बैठनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मुगलोंकी जूतियाँ सिर चढ़ानेके लिए मुझे कोई आग्रह नहीं है।

गज०—अच्छी बात है। इसके दण्ड-स्वरूप मै तुम्हे इसी समय अपने राज्यसे निकल जानेकी आज्ञा देता हूँ। जाओ।

अमर०—अभी जाता हूँ।

[अमरसिंह चले जाते हैं।]

गज०—(थोड़ी देर ठहरकर) जाओ दूत! मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ।

चौथा दृश्य।

स्थान-महाबतखाँके महलका बाहरी भाग।

समय-रात।

[महाबतखाँ अकेले बैठे हैं।]

महाबत०—मैंने उसका परित्याग तो कर दिया है, पर फिर रह रह कर उसका ध्यान आता ही है। अब भी वह प्रेम-विह्वल और दमकता हुआ किशोरमुख मेरी आँखोंके सामन नाच रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो कोई रत्न खो गया है। मैंने उसका पत्र क्यों फेर दिया! ऐसे शुद्ध और सच्चे प्रेमकी इस प्रकार अवज्ञा करके मैंने बहुत ही अनुचित कार्य किया। मैं अब सोचता हूँ कि उस समय मेरा उसके पिताके प्रति जो क्रोध था उसके आवेशमें उसके उन्मुख प्रेमका तिरस्कार करके मैंने बहुत ही बुरा किया। यदि मुझे कहीं क्षमा माँ-

गनेका अवसर मिलता तो मै दोनो हाथ जोडकर उससे क्षमा माँगता। कौन ?

[एक पहरेदार आता है ।]

पहरेदार—खुदावन्द! महाराज गजसिंह हुजूरसे मुलाकात करना चाहते है ।

महावत०—गजसिंह? जोधपुरके राजा?

पहरे०—खुदावन्द!

महाबत०—जाओ, उन्हे यही ले आओ ।

[पहरेदार जाता है ।]

महाबत०—महाराज गजसिंहका हमारे यहाँ क्या काम? कायर, अधम, मुगलोका दास । लो वे आ ही गये ।

[गजसिंह आते हैं ।]

गज०—आदाब अर्ज है ।

महाबत०—तसलीमात। कहिए, आज महाराजने इस गरीबखानेको क्यो कर रौनक बख्शी? क्या खबर है?

गज०—बादशाह सलामतने जनाबको याद फरमाया है ।

महाबत—यह उनकी बहुत बडी इनायत है । शायद मेवाडकी चढाई पर जानेके लिए मै याद किया गया हूँ ।

गज०—जी हाँ, जनाब!

महाबत०—इस बारेमें मैं कई दफा बादशाह सलामतकी खिदमतमे अर्ज कर चुका। लेकिन फिर भी न मालूम क्यों वे बार बार इस तरह मुझे इज्जत बख्शते है ।

गज०—शाही फौज कई बार मेवाडमें शिकस्त खा चुकी है । इसका बादशाह सलामतको बहुत मलाल है। इस बार लाचार होकर

उन्हें फिर आपकी तरफ इशारा करना पड़ा है। इस वक्त सिर्फ आप ही एक ऐसे बहादुर है जो उन्हे इस तौहीनसे बचा सकते है। आप उनके सबसे बड़े खैरख्वाह और मददगार है।

महाबत०—यह आप क्या फरमाते है ?

गज०—जनाब ! यह तो तमाम जहान जानता है।

महाबत०—हूँ ! (इधर उधर टहलने लगते हैं।)

गज०— खाँ साहब ! इस बार आप मेवाडकी लड़ाईमे जरूर हथियार उठावे। मै यह जानता हूँ कि मेवाड आपका वतन है। मै यह भी जानता हूँ कि राणा अमरसिह आपके भाई है। लेकिन साथ ही यह बात भी खयाल रखनेकी है कि आप उसे एक मुद्दतसे बिलकुल ही छोड चुके है। आपने अपना असली मजहब भी छोड दिया है। मेवाडके साथ आपका जो कुछ तअल्लुक था उसको आपने मुसलमान होकर बिलकुल तोड दिया है। इस लिए अब आप फिजूल पसोपेश क्यों कर रहे है !

महाबत०—(कुछ कुछ स्वगत) अगर मेवाड मेरा वतन न होता !

गज०—क्या वतन आपको जबरदस्ती अपनी गोदमे उठा लेगा ? जरा आप एक बार मेवाड जाइए तो सही। अगर आप लडनेके लिए न जायँ तो कमसे कम बिरादराना तौर पर ही जायें। मेवाडके लोग आपकी तरफ उँगलियाँ उठावेगे और कहेगे--" यही प्रतापसिंहके भतीजे है जो विधर्मी मुसलमान हो गये है। " बडे बूढे आपको देखकर नफरतसे मुहँ फेर लेगे, जवान आदमी गुस्से भरी नजरोंसे आपकी तरफ ताकेगे और औरतें झरोखोंमेंसे आपको कोसेगी। खाँ साहब ! आप इस बातकी जरा भी उम्मेद न रक्खें कि राजपूत कभी आपको अपना भाई समझकर गले लगावेगे।

महाबत०—हूँ ! (महाबतखाँ सोचने लगते है ।)

गज०—उम्रभर आपको मुगलोके साथ ही तअल्लुक रखना पडेगा। उनकी तरक्कीके साथ आपकी तरक्की है और उनके जवालके साथ आपका जवाल है। खाँ साहब, आप मेरी बातो पर खूब गौर करले।

[सन्यासीके भेसमे सगरसिंह आते है ।]

सगर०—महाबत !

महाबत०—कौन ? पिताजी ! आप यहाँ और इस भेसमे कैसे !

सगर०—मैने अब सन्यास ले लिया है।

महाबत०—सो क्यो पिताजी !

सगर०—महाबतखाँ ! शायद तुम्हे आश्चर्य्य होता होगा और यह बात भी आश्चर्य्य होनेकी है। जिसने देश, जाति और धर्म्मको जलाजलि देकर अपना सारा जीवन नष्ट कर दिया और अपना अधिकाश समय विजातियोकी करुणाका भिखारी बनकर गँवाया, वही अब अपने जीवनके सन्ध्या-कालमे फिर अपना मार्ग बदल रहा है ! लेकिन तुम जानते हो कि मै क्यों इस रूपमें उठ खडा हुआ हूँ।

महाबत०—नहीं पिताजी—

सगर०—इसलिए कि इतने दिनोके बाद मैने स्नेहमयी मातृभूमिकी पुकार सुनी है। माताका वह आह्वान कैसा गम्भीर, कैसा करुण और कैसा गद्गद है !—महाबत ! तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। अब मै अपने पापोका प्रायश्चित्त करता हूँ और तुमसे भी यही कहनेके लिए यहाँ आया हूँ कि तुम भी अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर डालो।

महाबत०—अपने पापोका ?

सगर०—हाँ अपने पापोंका। मैं स्वजनोंको छोडकर मुगलोंका दास हुआ था। पर तुम मुझसे भी बढ गये। तुमने धर्म्म तक छोड दिया। इसी लिए तुम्हारे पापोंकी सीमा नहीं है।

महाबत०—पिताजी! मुझे तो अपना कोई पाप समझमे ही नहीं आता। यदि मेरा यही विश्वास हो कि इस्लाम धर्म्म सत्य——

सगर०—बेटा महाबतखाँ! तुम्हारा यह विश्वास किस प्रकार हुआ? तुमने कुरान अवश्य पढा है और वह है भी बहुत अच्छा ग्रंथ। हिन्दूधर्म्म उसकी निन्दा नही करता और न उसके साथ इसका कोई विवाद ही है। लेकिन क्या तुमने अपना, अपने बाप-दादाओंका, व्यास, कपिल और शङ्कराचार्य्यका वह धर्म्म छोडनेसे पहले उसके ग्रथोंको भी पढा था? तुम्हारे समान मूर्ख और अनक्षरको धर्म्माधर्म्मका विचार कैसे और कहाँसे हुआ? जिस धर्म्मका मूलमत्र प्रवृत्तिका दमन और आत्मजय है, जिस धर्म्मका चरम विकाश सर्व्व भूतो पर दया करना है, और वह दया भी ऐसी जो केवल मनुष्य जाति तक ही परिमित न हो, बल्कि जिसके अनुसार एक चिउँटीका मारना भी निषिद्ध हो; उस धर्म्मको विना विचार किये छोडकर महाबतखाँ! तुम नहीं जानते कि तुमने कितना बडा पाप किया है।

महाबत०—पिताजी! मै तो यह देखकर बहुत ही हैरान हो रहा हूँ कि आज आप——

सगर०—कि आज मै धर्म्मकी व्याख्या करने बैठा हूँ। हैरान होनेकी बात ही है। बल्कि मै तो आप ही हैरान हो रहा हूँ कि आज मै क्या बन गया! जो संसारमे धनके सिवा और कुछ कभी जानता ही न था, उसीने धर्म्मके लिए संन्यास ले लिया! लेकिन महाबतखाँ! ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें उच्च प्रवृत्तिका. ऊँचा स्वर बजानेवाला

एक भी तार न बँधा हो। यदि सयोगवश किसी दिन घटनाकी उँगलीके आघातसे सहसा वह तार बज उठता है तो एक ही क्षणमें सारे हृदयमें उथलपुथल मच जाती है। आत्मा उस समय क्षुद्र स्वार्थकी केंचुलीसे मुक्त हो कर अनन्त आकाशकी ओर बढ़ा चला जाता है। यह बात उस दिन कल्याणीने मुझसे कही थी।

महाबत०—कल्याणीने ?

सगर०—हाँ, उस दिन उसीने मुझसे यह बात कही थी। इस समय भी उसकी वह बात मेरे कानोंमे सगीतकी स्मृतिके समान बज रही है। महाबतखाँ! क्या तुम्हे यह बात मालूम है कि कल्याणीके पिताने उसे घरसे निकाल दिया है ?

महाबत०—घरसे निकाल दिया है ? क्यों ? किस अपराधसे ?

सगर०—इसी लिए कि कल्याणी अब भी तुम्हारी—एक विधर्म्मीकी—पूजा करती है।

महाबत०—आपसे और उससे कहाँ भेट हुई ?

सगर०—एक गाँवके पास एक टूटी फूटी कुटियामें।

महाबत०—पिताजी! यही आपका उदार, अति उदार हिन्दूधर्म्म है न! मुसलमानोंके साथ हिन्दू इतनी घृणा, इतना विद्वेष करते है कि कल्याणीको उसकी पति-भक्तिका पुरस्कार 'घरसे निकल जाना' मिलता है। पिताजी! आप मुझसे प्रायश्चित्त करनेके लिए कहते है ? मै प्रायश्चित्त करूँगा, और अवश्य करूँगा। लेकिन इस लिए नहीं कि मैं मुसलमान हो गया हूँ, बल्कि इस लिए कि मै किसी समय हिन्दू था। उसी हिन्दू होनेके पापका मै प्रायश्चित्त करूँगा।—

सगर०—महाबत खाँ!—

जहाँ०—तुम सब लोग फजूल हो, किसी मर्जकी दवा नहीं हो।

हिदायत०—बेशक। जहाँपनाहका फरमाना बहुत ही बजा है।

जहाँ०—हिदायत! तुम तो जगमे कैद हो ही गये थे, वह तो राणाकी मेहरबानीसे किसी तरह तुम्हारी रिहाई हो गई। अब्दुल्लाने तो खैर लड़कर ही जान दी, लेकिन तुम तो वहाँ मर भी न सके!

हिदायत०—बेशक, जहाँपनाह! यह बन्दा तो खुद चाहता था कि जगमें मारा जाय। मगर क्या अर्ज करूँ—मेरी बीबीको यह बात बिलकुल पसन्द न आई।

जहाँ०—चुप—

[सगरसिंह आते हैं।]

जहाँ०—यह लो, राजा सगरसिह आगये। राजा साहब!

सगर०—जहाँपनाह!

जहाँ०—आप मेवाडके राणा बनाये जाकर चित्तौर भेजे गये थे; पर सुना कि आपने चित्तौरका किला राणा अमरसिंहके सपुर्द कर दिया।

सगर०—जी हाँ खुदावन्द!

जहाँ०—किसके हुक्मसे?

सगर०—मैने उसके लिए किसीके हुक्मकी जरूरत नही समझी।

जहाँ०—क्यो?

सगर०—इस लिए कि मैने समझा कि इन्साफकी नजरसे राणा अमरसिह ही उसके मालिक है।

जहाँ०—आपने समझा?

सगर०—बेशक। मैने सुना था कि शाहशाह अकबरने बाकायदा लडकर चित्तौरपर कब्जा नहीं किया था। उन्होने धोखेसे जयमलकी जान ली थी।

जहाँ०—राजा साहब ! आप कबसे इस तरहका इन्साफ करनेके काबिल हुए ?

सगर०—जिस दिन मैंने एक नई रोशनी, एक नया नूर देखा ।

जहाँ०—नया नूर देखा ?

सगर०—जी हाँ । मैंने एक तया नूर देखा। मेरी आँखोंके सामनेसे एकाएक एक परदा उठ गया । महाराज रामचद्रके वक्तसे अब तकका मेवाडका गुजरा हुआ जमाना मेरी आँखोके सामने फिर गया । बाप्पा-रावलकी फतहके किस्से, समरसिंह और चूँडाजीकी अपने मुल्कके लिए जान्‌निसारी, कुम्भकी बहादुरी वगैरा उम्दा उम्दा तमाशे देखे । एकाएक वहाँ कुहरा सा छा गया और उसीमें मुझे प्रतापसिंहकी—अपने भाई प्रतापसिंहकी—तलवार चमकती हुई दिखलाई दी । मै अपने आपको लानत मलामत करने लगा ।

जहाँ०—उसके बाद क्या हुआ ?

सगर—मेरे मनमें इस बातका खयाल पैदा हुआ कि मैं भी उन्हींके खानदानका हूँ; मगर मैंने उनके दुश्मनोंका साथ देकर बहुत ही बुरा किया । तो भी मैने अपने आपको समझानेकी कोशिश की कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह बहुत ही मुनासिब है । उसके बाद एक दिन मैंने और भी अजीब नज़ारा देखा ।

[मारे गर्वके सगरसिंहकी आँखोंमे जल आ जाता है ।]

जहाँ०—हाँ हाँ, कहे चलिए । क्या देखा ?

सगर—वह बात पुराने जमानेकी नहीं है, तवारीखकी नहीं है और पुराणोके किस्सोकी नहीं है । मैंने देखा कि मेरी लडकी—मुगलोंके इसी गुलाम बने हुए शख्सकी लडकी—अपने उसी मुल्कके लिए फटे पुराने कपडे पहन कर जंगलोंमें घूमती फिरती है जिस मुल्ककी

आजादी छीननेके लिए मै मुगलोके साथ मिला हूँ। मेरी आँखोमें आँसू भर आये, मेरा गला रुँध गया, शर्म्म, फक्र, रिआजत और मुहब्बतसे मेरा दिल भर आया। मुझसे न रहा गया। मै चित्तौरका किला अपने भतीजेके सपुर्द करके चला आया।

जहाँ०—राजा साहब! आप मरनेके लिए तो तैयार हो कर आये हैं न?

सगर—बेशक जहाँपनाह! मैं मरनेके लिए पूरी तैयारी करके आया हूँ। आगे मुझे मौतसे बहुत डर लगता था, लेकिन उस दिनसे मैने एक नया सबक सीखा।

जहाँ—वह कौनसा सबक?

सगर०—जान्-निसारीका सबक। दुनियामे दो बादशाहते है, उनमेसे एकका नाम खुदगरजी और दूसरीका नाम जान्-निसारी है। एककी पैदाइश दोजखसे है और दूसरीकी बहिश्तसे। एकका मालिक शैतान है ओर दूसरीका मालिक परमेश्वर या खुदा। मै अब तक खुदगरजीके मुल्कमें रहता था, पर उस दिन मैंने जान्-निसारीका मुल्क देखा। उस मुल्कके मालिक बुद्ध, ईसा और गौराग है, उस मुल्कका कानून मुहब्बत रिआजत (भक्ति) और रहम है। वहाँका इन्तजाम है खिदमतगुजारी, सजा है मेहरबानी और इनाम है जान्-निसारी। उसी दिनसे मै उस मुल्ककी रिआया बन गया। जिन हाथोंमें मैंने आज तक कभी तलवार नहीं पकडी थी, उन्हीं हाथोंमें मैने उस दिन गरीबोकी मददके लिए तलवार पकडी और तब मुझे अपने कन्धों पर डाकुओंकी तलवारकी चोट फूलोंकीसी चोट मालूम होने लगी।

जहाँ०—उसके बाद क्या हुआ?

सगर—उसके बाद मैं मौतके जरिये अपने पुराने गुनाहोंका बदला चुकानेके लिए यहाँ चला आया। आगे मै मरनेसे बहुत डरा करता

था, लेकिन अब मुझे उससे जरा भी डर नही लगता। जो दिलोजानसे प्यार कर सकता हो और जिसने जान्‌निसारीका सबक सीखा हो, उसे मौतका क्या डर ?

जहाँ०—बेहतर है। अब आप मरनेके लिए तैयार हो जाइए।

[जहाँगीर एक चोबदारको इशारा करता है। चोबदार आगे बढ आता है।]

सगर—जहाँपनाह ! इसके लिए किसी दूसरे शख्स या जल्लादकी जरूरत नही है। (कमरसे कटार निकाल कर अपनी छातीमें भोंक लेते है और वहीं गिरकर दोनो हाथ पसार कर कहते है)—“यही खून मेरे गुनाहोका बदला हो।”
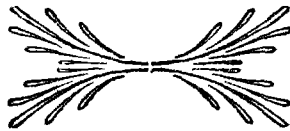
चौथा अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान–उदय सागरका किनारा । **समय**—चाँदनी रात ।

[*राणा अमरसिंह एक चबूतरे पर बैठे हैं । उदय सागरकी लहरोंका शब्द* सुनाई पड रहा है । पास ही एक वृक्ष पर एक कोयल बोल रही है । राणा आँखें बन्द करके उसी का कुहुकना सुन रहे है ।]

[कुछ दूर पर कुछ स्त्रियाँ 'होली.' गाती और नाचती हैं ।]

पीलू खम्माच ।

बन बंसी बजावत बनवारी ॥

देह गेहको नेह न राखत,
नीर छीरकी सुधि बिसरावत,
बंसी सुनि बनको ही धावत,
हैं व्याकुल सब ब्रजनारी ॥

चहक उठीं कुंजनमें चिरियाँ,
लागी चलन वायु यहि बिरियाँ,
चटक उठीं फूलनकी कलियाँ,
खूब बनी हैं मतवारी ॥

चन्दकिरन जमनामें गेरत,
राधा राधा बसी टेरत,
राधा भौंचक इत उत हेरत,
कोयल कूक रही डारी ॥
है व्याकुल निकसीं सब बामा,
तजि तजिके निज घरको कामा,
देखन चलीं चतुर घनश्यामा,
है कैसो बंसीधारी ॥

राणा—ये सब होली खेलने और गानेमे ही मग्न है। यदि इस समय इनके पैरो तले भूकम्प भी हो जावे तो कदाचित् इन्हें माळूम न हो ! क्या ससार है ! मनुष्यको ये ही सब खिलौने देकर ही तो भुला रक्खा है। नहीं तो क्या कोई कभी इस मरु-भूमिमे रहनेकी इच्छा करता ? संसार बडा छलिया है। यह लो मानसी आगई !

[मानसी आती है ।]

मानसी—पिताजी ! आप अभी तक यहीं बैठे हैं ! चलिए, महलमें पधारिए। यहाँ ठण्ड पड़ती है।

राणा—जरा ठहर जाओ, चलते है। यहाँ उदयसागरके किनारे बैठनेसे मन जरा शान्त होता है।—मानसी !

मानसी—हाँ पिताजी !

राणा—क्या तुम्हे भी कभी इस बातका ध्यान आता है कि ससार बडा छलिया है ?

मानसी—छलिया ?

राणा—हाँ छलिया। मनुष्य कहीं विचार करके—चिन्ता करके अमर न हो जाय, इसी लिए संसार उसके मनको तरह तरहकी और और चिन्ताओंमें फँसाये रहता है।

मानसी—नहीं पिताजी! मै तो संसारको इतना बुरा नहीं समझती।

राणा—यह चाँदनी रात देखो! ये लहरोंके थपेड़ोंके शब्द सुनो! इस सुन्दर वायुका अनुभव करो! इन सब बातोंसे मनुष्यको अलग रखनेके लिए संसार उसे बल-पूर्वक खींच कर जीवनके छोटे मोटे सुखों और दुखोंकी ओर लिये जा रहा है। बेटी! अब तो मै इस संसारको त्याग दूँगा। यह ससार खाली माया है।

मानसी—यदि इसे माया ही मान लें तो भी यह बहुत ही मनोहर माया है पिताजी! सच मुच यह बहिःप्रकृति बहुत ही सुदर है। यह हम लोगों पर बहुत कृपा रखती है। जब हम लोग ग्रीष्म ऋतुकी भीषण गरमी-से झुलस जाते हैं तब तुरन्त ही मनोहर और गम्भीर गर्जन करती हुई वर्षा ऋतु आ जाती है और जल बरसा कर हम लोगोंको शीतल कर देती है। जब बहुत कडे जाड़ेसे हम लोग ठिठुर जाते हैं तब वसन्त ऋतु आकर अपनी मन्द, सुगन्धित वायुसे शीतके परदको उडा देती है। जब हम लोग दिनकी तीव्र ज्योतिसे घबरा जाते हैं तब रात आकर माताकी तरह हम लोगोंका व्यथित मस्तक अपनी गोदमें ले लेती है। पर यहीं उसकी कृपाका अन्त नहीं हो जाता।

राणा—तो उसका अन्त कहाँ होता है?

मानसी—मनुष्यके चिन्ता-जगतमें। पिताजी! आप इस सरोवरको देख रहे हैं?

राणा—हाँ बेटी, देख रहा हूँ।

मानसी—इस पर चन्द्रमाकी किरणें पडती हुई दिखाई देती हैं न?

राणा—हाँ बेटी, दिखाई देती हैं।

मानसी—आप इसे पकड सकते हैं?

राणा—किसे?

मानसी—इस चाँदनीको, जलके इन थपेड़ोंके कलकलको । जिस समय अँधेरेमे यह जलतल छिप जायगा और हवा रुक जायगी, उस समय यह सौन्दर्य्य, यह संगीत कहाँ जायगा?

राणा—तुम ही बतलाओ बेटी, कहाँ जायगा?

मानसी—ठीक तो नहीं कह सकती कि कहाँ जायगा, पर इतना अवश्य है कि वह लुप्त नहीं होगा । वह रहेगा और बिखर जायगा—विरहीकी स्मृतिमे, कविके स्वप्नमें, माताके स्नेहमें, भक्तकी भक्तिमें, और मनुष्यकी अनुकम्पामें । मनुष्यका जो कुछ सुन्दर है, पृथिवीकी ये किरणे, सुगन्ध, झकार नृत्य, सबको प्रकृतिने गढ़ा है । नहीं तो इस सौन्दर्य्यकी सार्थकता कहाँसे हो?

राणा—बेटी, क्या मनुष्यका कुछ 'सुन्दर' कहे जाने योग्य है? हम जिस समय अन्नका एक ग्रास मुँहकी ओर ले जाते है, उस समय सारा ससार ललचाई हुई आँखोंसे उस ग्रासकी ओर देखता है। मानो उस ग्राससे हमने उसे वचित कर दिया हो। इतना लालच! इतनी ईर्ष्या! इतना द्वेष!

मानसी—यह तो लोगोंकी मानसिक व्याधि है । यदि यह व्याधि न होती तो मनुष्यकी अनुकम्पाके लिए स्थान ही नहीं रहता! तब किसका दु:ख दूर करके, किसका उद्धार करके मनुष्य सुखी होता? पिताजी! क्या संसारको अधम मानकर छोड देना चाहिए? कभी नहीं। मनुष्य बड़ा दुखी है, उसका दु:ख दूर करना चाहिए। संसार बडा दीन है, उसका उद्धार करना चाहिए।

राणा—तुम्हारी बात बहुत ठीक जान पडती है । हमारा सिर इस समय बहुत चकरा रहा है। हम कुछ सोच समझ नहीं सकते।

नैपथ्यसे—मानसी!—मानसी!

मानसी—माँ, आती हूँ। पिताजी, अब आप भी पधारें। अँधेरा हो चला।

[मानसी जाती है।]

राणा—यह एक स्वर्गकी कहानी है, नीहारिका है, ससारका सार-भूत सौन्दर्य्य है। सुन्दर हवा बह रही है, आकाशमे एक भी बादल नहीं है, ससार बिलकुल शान्त और निस्तब्ध है। केवल उदयसागरके ऊपरसे होकर सगीतकी लहरे जा रही है। मालूम होता है कि बहुत-सी किशोर स्वर्णाभाये आकर इन्ही लहरोमे स्नान कर रही है। ये तरगे उन्हींका मधुर हास्य है। पेडोंके पत्ते चाँदनीमे हिल रहे है और हवाके साथ खेल रहे है, यह मर्मर शब्द उनकी क्रीडाका कल-रव है। जान पडता है कि जड पदार्थ भी सौन्दर्य्यका अनुभव करते है।

[रानी आती है।]

रानी—महाराज!

राणा—जरा चुप रहो, हम स्वप्न देख रहे है।

रानी—क्या जागे जागे ही? तब तो मैंने हार मानी।

राणा—जाने दो, मोह-भग हो गया। हाँ, अब तुम कहो, क्या हुआ?

रानी—अब बाकी ही क्या रह गया?—आजकलकी लडकियाँ अपने माँ-बापकी बात तो सुनती ही नही। उस दिन गोविन्दसिंहकी लडकी और लडका दोनों अपने बापकी एक जरासी बात पर घर छोड कर चले गये। और कल—

राणा—फिर वही ससारका रोना, दुनियाका निकम्मा चरखा।

रानी—न जाने इन कलयुगकी लडकियोंको क्या हो गया है! हम लोगोंका भी तो कभी लडकपन था।

राणा—उस समय सतयुग रहा होगा। हम बहुत दिनोंसे यही देखते आ रहे हैं कि माताओंका जन्म तो सदा सतयुगमे होता है, पर उनकी लडकियाँ जनमती है कलियुगमे। अच्छा अब इन सब बातोंको छोडो और यह बतलाओ कि हमे क्या करना होगा।

रानी—मानसीका व्याह करना हो तो अभी कर दीजिए; नहीं तो फिर आगे चल कर उसका व्याह न होगा।

राणा—हमे भी ऐसा ही जान पडता है कि मानसीका व्याह न होगा। हमारी समझमे उसका जन्म व्याह करनेके लिए हुआ भी नहीं है।

रानी—बस बस, मै समझ गई। आपके भी ये लच्छन अच्छे नहीं है! आप जागे जागे स्वप्न देखते हैं!

राणा—भला हम स्वप्न तो देखते है, तुम तो वह भी नहीं देखतीं।

रानी—अब क्या होगा?

राणा—कौन जाने! देखो, क्या होता है!

रानी—देखे क्या? जोधपुरसे आदमी लौट कर अभी तक नहीं आया। सत्यवतीके लडकेको जोधपुर भेजा था, वह कहाँ लौटा है!

राणा—अरुणसिह वहाँसे लौट आया है।

रानी—लौट आया! व्याह कबका पक्का हुआ?

राणा—महाराज हमारी कन्याके साथ अपने पुत्रका व्याह न करेगे।

रानी—क्यो?

राणा—सुना है कि वे हमसे कुछ नाराज हैं!

रानी—क्यों?

राणा—यही कारण मालूम होता है कि युद्धमे हम जीते और मुगल हार गये।

रानी—मैने तो पहले ही कह दिया था कि मानसीका ब्याह न होगा। अब हो चुका ब्याह। ऐसे झमेलोंमें कहीं ब्याह होता है!

राणा—हम भी यही समझते है। मानसीका जन्म ब्याहके लिए नहीं हुआ है। यह सब भूल है।

रानी—कैसी भूल!

राणा—जोधपुरके राजकुमारके साथ मानसीके ब्याहका प्रस्ताव करना भूल; इतनी सेना लेकर मुगलोके साथ युद्ध करने जाना भूल, हमारा तुम्हारा ब्याह हुआ सो भी भूल, हमारा राज्य, हमारा जीवन,—सब भूल।

रानी—यदि महाराज मुझसे ब्याह न करते तो मै समझती हूँ कि वह भी एक भूल होती।—क्यो, हँसे क्यो?

राणा—और हमने सुना है कि महाराज आगरे गये है।

रानी—क्यो?

राणा—वहाँ जाकर बादशाहके कान भरेगे और मेवाड पर चढाई करनेके लिए सेना भिजवावेंगे।

रानी—फिरसे?—आप हँसते है! यह भी क्या हँसनेकी बात है?

राणा—इससे बढकर हँसनेकी और कौनसी बात मिलेगी! रानी, तुम भी खूब हँस लो।

रानी—क्या मै भी आपके साथ पागल हो जाऊँ?

राणा—अरे बड़ी बढिया खबर है रानी। अबकी सब नष्ट हो जायगा। कुछ भी न बचेगा।

रानी—जो चाहे सो हो, मैं यह सब सुनना नहीं चाहती। यह ब्याह जरूर होना चाहिए।

राणा—किस तरह ?

रानी—आप मारवाड पर आक्रमण करें।

राणा—रानी! इतने दिनोंमें आज इस बातका एक प्रमाण मिला कि तुम क्षत्राणी हो। तुम जानती हो, शक्तिसे बड़ी भक्ति होती है। जोधपुरके महाराजमे जो मुगल-भक्ति है, वह हममें नहीं है। हममें केवल अपनी शक्ति है, सो वह भी समाप्त हो चली है।

रानी—तब क्या यह अपमान चुपचाप सह लोगे ?

राणा—नहीं तो और क्या करेंगे ? चुपचाप सहन न करेंगे तो रो लेंगे, चिल्ला लेंगे। देखो, भोजन बना कि नहीं ? डरकी कोई बात नहीं है। अवकी बार सर्वस्व नष्ट हो जायगा। जिस जातिमें इतनी क्षुद्रता हो, उसकी रक्षा स्वय परमेश्वर भी नही कर सकता, मनुष्यकी तो बात ही क्या है!—जाओ।

रानी—लेकिन उसमे आपका क्या अपराध है ?

राणा—अपराध! हमारा अपराध यही है कि हम और महाराज दोनो एक ही जातिके हैं। यदि किसी एक बैठनेवालेके दोषके कारण नाव डूबती है, तो उसके निर्दोष और निरपराध साथी भी उसीके साथ डूब जाते है।—जाओ।

[रानी जाती है।]

राणा—आकाश कैसा काला है!

[राणा चले जाते हैं। मानसी फिर आती है।]

मानसी—अजयसिंह विदेश चले गये! भला जानेसे पहले एक ार भेंट तो कर जाते! केवल एक पत्रमें—छोटेसे सूखे पत्रमें ही आकर

और इस बातको न जतलाकर कि मैं विदेश जाता हूँ, 'सदाके लिए बिदा' ले जाते! अजय! अजय!—नहीं, तुम बडे निष्ठुर हो। मै तुम्हारे लिए शोक न करूँगी। चन्द्रमाकी ज्योति इतनी क्षीण क्यों है? उदयसागरकी छाती अचानक इतनी मलीन क्यों हो गई? प्रकृतिके मुखपरकी वह हँसी कहाँ चली गई? गाती है—

खम्माज।

सोइ चन्द्र-वदन मोहि भावत है॥
करत प्रकाशित जो वसुधाको
मधुर रूप दरसावत है॥
पास रहत जब, खिलत चाँदनी
दूर भये तम छावत है।
चन्दा जात, जात नहिं सौरभ
फूलनसों जो आवत है॥
समझ परत नहिं भेद कहा है
कोयल कूक सुनावत है।
वाके बिना लगत जग सूनो
मन रहि रहि घबरावत है॥×

दूसरा दृश्य।

स्थान—मेवाडके पास महाबतखाँका खेमा। **समय**—प्रभात।

[महाबतखाँ, शाहजादा परवेज और महाराज गजसिंह खडे हुए बातें कर रहे हैं।]

महाबत०—शाहजादा साहब! अब आप देर न करें। इस एक लाख फौजको लेकर आप चित्तौरका किला घेर लें।

× यह 'मालकोस' रागमें भी गाया जा सकता है।

परवेज—बहुत खूब ।

[शाहजादा परवेज जाते है ।]

महाबत०—और महाराज! आप एक सिरेसे मेवाडके सारे गाँव जलाना शुरू करे। अगर आपको कोई रोके तो फौरन् उसे कत्ल कर डाले। मै जानता हूँ, इस काममें आप बहुत ही काबिल और होशियार है। लेकिन एक बातका आप जरूर खयाल रक्खें कि औरतो पर किसी किस्मका ज़ुल्म न होने पावे।

गज०—बहुत खूब! मै मेवाडमें एक भी राजपूत न रहने दूँगा।

महा०—जी हाँ महाराज, मै भी यह बात बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि मुसलमान राजपूतोंके उतने ज्यादा जानी दुश्मन नहीं है जितने राजपूत खुद अपने भाइयोंके है। हिंदुस्तानकी पुरानी तवारीखे पढ कर मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि हिन्दुओको अपने भाइयो पर ज़ुल्म करने और उन्हें तकलीफ पहुँचानेमें जितना मज़ा मिलता है उतना और किसी काममे नहीं मिलता। मैं यह बात बहुत अच्छी तरह समझता हूँ कि राजपूतोंका नामोनिशान जितनी अच्छी तरह आप मिटा सकेगे उतनी अच्छी तरह और कोई न मिटा सकेगा। इसी लिए मैने यह काम आपके सुपुर्द किया है। महाराज साहब! अब आप जा कर अपना काम शुरू करें।—जाइए।

गज०—बहुत खूब!

[गजसिंह जाते है ।]

महाबत०—हिन्दू! राजपूत! मेवाड! खबरदार! यह एक कौमके साथ दूसरी कौमका मुकाबला नहीं है, यह एक मजहबका दूसरे मजहबके साथ मुकाबला है। देखें कौन जीतता है। (जाते हैं।)

तीसरा दृश्य।

स्थान—उदयपुरका राज-प्रसाद। **समय**—रात।

[राणा अमरसिंह और सत्यवती।]

राणा—क्या इस बार महाबतखाँ लड़ने आये हैं?

सत्य०—हाँ महाराज! इस बार महाबतखाँ ही आये है और उनके साथ एक लाखसे अधिक सेना है।

राणा—(ठंडी साँस लेकर) सत्यवती! मैंने तो पहले ही कह दिया था।

सत्य०—क्या?

राणा—यही कि अबकी कुछ न बचेगा, सब नष्ट हो जायगा। सारा राजपूताना तो चला गया, क्या अकेला मेवाड सिर ऊँचा किये रहेगा? क्या यह बात भी विधातासे देखी जा सकती है? इस बार मेवाड़ भी जायगा। सत्यवती! तुमने नीचा सिर क्यों कर लिया? यह तो बडे आनन्दकी बात है!

सत्य०—महाराज! क्या यह आनन्दकी बात है?

राणा—क्यों? आनन्दकी बात क्यों नहीं? बिछौने पर पडा पडा मेवाड और कब तक मृत्युकी यन्त्रणा भोगता रहेगा? इस बार उसकी यन्त्रणाका अन्त हो जायगा।

सत्य०—तो क्या अब महाराज युद्ध न करेंगे?

राणा—युद्ध न करेंगे? युद्धके सिवा और करेंगे ही क्या? इस बार सचमुच युद्ध होगा। अब तक तो लड़क-खेलवाड़ था। इस बार बडा आनन्द होगा, महा-विप्लव होगा। अबकी भाई भाईमे लडाई है। सारा भारत उसका तमाशा देखेगा।

सत्य०—मैने सुना है कि महाबतखाँके साथ जोधपुरके महाराज गजसिंह भी आये है।

राणा—ओह! ठीक है। तो क्या उन्होंने हमारा निमन्त्रण स्वीकार कर लिया? हमने पहले ही सोचा था कि क्या महाराज हम लोगोंसे इतने नाराज हो जायँगे कि हमारा निमन्त्रण भी स्वीकार न करेंगे?

सत्य०—वही राजपूतकुलांगार—

राणा—क्या कहा?—अब कभी ऐसा न कहना। वह परम भक्त, परम वैष्णव है। हम ही मेवाड-वंशके कुलांगार हैं जो इतने दिनों तक हमने इस एक ईश्वरको न माना!—"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।"—गजसिंह! वाह कैसा अच्छा नाम है! एकहीमें गज भी और सिंह भी! सूँड भी हिलाते हैं और केसर भी हिलाते हैं।—खूब!

सत्य०—राजपूत होकर राजपूतोंसे लडने आये हैं।

राणा—बिना इसके यज्ञनाश सम्पूर्ण कैसे होगा? महादेवके साथ जब तक नन्दी भृंगी न आवेंगे तब तक काम कैसे चलेगा?—शास्त्रोंकी बात कभी झूठ नहीं होती।

सत्य०—हा हतभाग्य मेवाड! (अपनी आँखोंके आँसू पोंछती है।)

राणा—सत्यवती! विधाताने जिस समय भारतवर्षको सिरजा था, उस समय उसके भाग्यमें लिख दिया था कि इसका सर्वनाश स्वयं उसकी सन्तान ही करेगी। तक्षशीलको याद करो, जयचन्द्रकी बात याद करो, मानसिंह और शक्तसिंहको लो और उन्हींके साथ साथ महाबतखाँ और गजसिंहको भी देखो। ठीक मिलान मिलता है न? बिलकुल अक्षर अक्षर मिलता है! विधाताका लेख कभी व्यर्थ नहीं होता। जाओ सत्यवती, अब मैं सेना तैयार कराता हूँ।

[सत्यवती जाती है।]

राणा—यदि कोई जाति नष्ट होती है, तो वह अपने ही दोषसे नष्ट होती है,—इसी प्रकार नष्ट होती है। जब जाति निर्जीव हो जाती

है तब व्याधि प्रबल हो उठती है और घर घर ऐसे ही विभीषण जन्म लेते हैं।

[गोविन्दसिंह आते हैं।]

राणा—गोविन्दसिंहजी, कहिए क्या समाचार है?

गोविन्द०—महाराज! महाबतखाँ निरीह ग्रामवासियोंके घर जला रहे हैं।

राणा—जला रहे है? उचित ही तो करते है।

गोविन्द०—उचित करते है? हम इसका उनसे पूरा पूरा बदला लेंगे।

राणा—अवश्य! नहीं तो मेवाडका ध्वस पूरा कैसे होगा।

गोविन्द०—महाराज युद्ध तो अवश्य ही करेंगे?

राणा—युद्ध न करेंगे तो और करेंगे ही क्या? गोविन्दसिंहजी? राजपूतसेना कितनी होगी? पाँच हजार तो होगी न? वही बहुत है। मरनेके लिए इससे अधिक सेनाकी आवश्यकता नहीं होती! महाबतखाँकी सेना तो प्राय. एक लाख होगी न? होने दो, उससे क्या होता जाता है।

गोविन्द०—राणा! (सिर नीचा कर लेते हैं।)

राणा—क्यो गोविन्दसिंहजी! आपने भी सिर नीचा कर लिया? उठिए, जागिए। आज बडे आनन्दका दिन है। घर घर मगलवाद्य बजने दीजिए। जगह जगह लाल निशान उडने दीजिए। उदयपुरके दुग पर एक बार अच्छी तरह मेवाडकी लाल ध्वजा फहराने दीजिए। खूब अच्छी तरह देख लीजिए। फिर दो दिनके बाद वह देखनेको न मिलेगी।

गोविन्द०—महाराज! हम लोग लडेंगे और मरेंगे। लेकिन दु:ख यही है कि तब भी माताकी रक्षा न कर सकेंगे।

राणा—इसमें दु:ख काहेका ? माता किसकी नहीं मरती ? हमारी माता भी मरेगी। माता किसीकी बहुत दिनों तक नहीं जीती। उसीके साथ साथ हम भी मरेंगे।

गोविन्द०—महाराज ! ऐसा ही हो।

राणा—हाँ ! ऐसा ही होगा। गोविन्दसिंहजी आइए, मरनेसे पहले एक बार अच्छी तरह गले तो मिल लें। (गले मिलते है।) अच्छा, अब जाइए, मरनेकी तैयारी कीजिए।

[गोविन्दसिंह जाते है। रानी आती है।]

राणा—रानी खूब उत्सव करो ! आनन्द मनाओ !

रानी—क्या मानसीका ब्याह निश्चित हो गया ?

राणा—मानसीका नहीं मेवाडका ब्याह होगा।

रानी—मेवाडका ब्याह ! मेवाडका ब्याह कैसा ?

राणा—अबकी ध्वसके साथ मेवाडका ब्याह होगा।

रानी—इसका क्या अर्थ ?

राणा—बड़ा बढ़िया अर्थ है। अबकी भाई भाईकी लडाई है। खूब आनन्द मनाओ। अबकी ब्याह होगा !–विनाशके साथ !–ध्वसके साथ !

[राणा जाते हैं।]

रानी—अब तो ये बिलकुल ही पागल हो गये। मैं पहलेहीसे समझती थी। चलो घरभर पागल हो गया ! अब मै क्या करूँ ?

[मानसी आती है।]

मानसी—माँ, पिताजीको क्या हो गया है ? वे पागलोंकी तरह इधरसे उधर घूमते फिरते है ! उन्हें क्या हो गया है ?

रानी—और होना क्या है ? वे पागल हो गये हैं। जाऊँ, देखूँ।

[रानी जाती है।]

मानसी—यह महाबतखाँ राजपूत है ! यह गजसिंह भी राजपूत है ! इतनी ईर्ष्या ! इतना द्वेष ! हायरे अधम जाति ! तेरा पतन न होगा तो और किसका होगा ? जब भाई भाईमें ही लड़ाई हो तो फिर कौन बचा सकता है !

चौथा दृश्य ।

स्थान—मेवाडमें एक गाँवका रास्ता । **समय**—सन्ध्या ।

[सत्यवती और अरुण चले जा रहे हैं ।]

सत्यवती—अरुण !

अरुण—क्यों माँ !

सत्य०—चलनेमें कष्ट होता है ?

अरुण—नहीं माँ ।

सत्य०—आज हम लोग इसी गाँवमें ठहरेंगे ।

अरुण—क्यों, यहाँ क्या काम है ?

सत्य०—गाँववालोंसे चलनेके लिए कहना है ।

अरुण—कहाँ ?

सत्य०—लड़ाई पर । मेवाड़का वीरकुल नष्ट हो गया । अब नये वीरकुलकी सृष्टि करनी पड़ेगी । पूजाका नया प्रबध करना पड़ेगा । चलो, चलें । सन्ध्या होती जाती है । (दोनों जाते हैं ।)

[कई देहाती आते हैं ।]

पहला देहाती—ऐसा बढ़िया देश; अबकी बार गया समझो ।

दूसरा देहाती—अबकी बार स्वय महाबतखाँ आये हैं । अब रक्षा नहीं हो सकती ।

तीसरा देहाती—महाबतखाँ क्या खूब लड़ना जानते हैं ?

दूसरा देहाती—ओह ! क्या पूछना है ।

चौथा देहाती—हैं: ! उन्होंने लड़ना कब सीख लिया ? मैने तो अभी उन्हें उस दिन पैदा होते देखा था।

दूसरा देहाती—इस तरह तो सभीको कोई न कोई पैदा होते देखता है। पर इससे क्या यह सिद्ध हो जाता है कि वह लड़ना नहीं जानता ?

चौथा देहाती—भइया, तुम तो बडे भारी न्यायशास्त्री हो !

पहला देहाती—देखो, मालूम होता है, उस गाँवमें आग लगी है।

सब—कहाँ ?

पहला दे०—वह देखो, धुआँ उठ रहा है।

चौथा दे०—वह ? वह तो बादल है।

दूसरा दे०—क्या बादल जमीनसे उठ कर ऊपर जाता है ? बादल भी कहीं घूमता है ? वह देखो, वह घूम रहा है।

चौथा दे०—तो, धूल उड़ती होगी।

दूसरा दे०—हाँ क्यो नहीं ! धूलका रंग काला होता है न !

चौथा दे०—अरे यार, तुम तो बडे भारी हुज्जती दिखाई देते हो।

पहला दे०—और, यह गाँववालोंकी चिल्लाहट नहीं सुनाई पड़ती ?

बाकी सब—हाँ हाँ।

चौथा दे०—अरे, लोग गाते होंगे। नहीं तो गधा रेंकता होगा।

दूसरा दे०—दोनोंकी आवाज एक ही तरहकी होती है न ! क्यों डिजी !

पहला दे०— यह देखो, बहुतसे गाँववाले रोते चिल्लाते इसी तरफ आ रहे हैं।

तीसरा दे०—और उनके पीछे पीछे सिपाही गोलियाँ चलाते आ रहे हैं।

नैपथ्यमें—दोहाई है! दोहाई है साहब! मारो मत! मारो मत!

पहला दे०—हाय हाय! बेचारे सब—

[कल्याणी और अजयसिंह आते है।]

अजय०—(देहातियोंसे) भइया, तुम लोग खडे क्या देख रहे हो! जरा इन लोगोको बचाओ।

सब—भला हम लोग क्या करेगे?

अजय—तब क्या तुम चुपचाप खडे खडे यह अत्याचार देखा करोगे?

चौथा दे०—और नहीं तो क्या उनके पीछे प्राण देगे? चलो भइया, भागे! वे इसी ओर आ रहे है।

कल्याणी—क्या भागनेसे बच जाओगे? कभी नहीं। तुम लोगोंकी भी पारी आती है। कोई भी न बचेगा। तुम लोगोके भी घर जलाये जायँगे।

पहला दे०—उहँ, जब जलाये जायँगे तब देखा जायगा। आयु रहते कभी कोई मरता है? लो, ये लोग तो आ गये। भागो, भागो।

[अजयसिंह और कल्याणीके सिवा सब लोग भाग जाते हैं।]

अजय०—यह चिल्लाहट तो और भी पास आती जाती है। यह बन्दूकका शब्द! कल्याणी! तुम जरा एक ओर हट कर खडी हो जाओ। मैं इन लोगोंको बचाऊँगा।

कल्याणी—हाँ भइया, जहाँ तक हो सके इन लोगोको बचाओ।

[कल्याणी वहाँसे थोडी दूर पर चली जाती है।]

अजय०—कल्याणी! यह तो मै नहीं कह सकता कि मैं इन लोगोको बचा सकूँगा या नहीं; पर हाँ इनके लिए अपने प्राण अवश्य दे सकूँगा। मैंने मानसीसे जो महामन्त्र सीखा है, आज उसीका साधन करूँगा। लो, ये आ रहे है। (म्यानसे तलवार निकाल लेते हैं।)

[हाँफते हुए कई देहाती आते है । उनके पीछे पीछे नगी तलवारें लिये हुए बहुतसे मुगल-सिपाही आते हैं ।]

देहाती—महाराज! हमे बचाइए! हमे बचाइए! (अजयसिंहके पैरों पर गिर पडते है ।)

अजय०—(सिपाहियोंसे) खबरदार!

पहला सिपाही—चुप रहो। (तलवार उटाता है ।)

(अजयसिंह उसे तलवारसे मारकर जमीन पर गिरा देते हैं । बाकीके सिपाही अजयसिंहके साथ लडने लगते है। एक एक करके सब मुगल-सिपाही जमीन पर गिर जाते है । इसके बाद थोडेसे सिपाही और आ जाते है ।)

अजय०—कल्याणी! अब रक्षा नहीं हो सकती, भागो।

कल्याणी—भइया, तुम यहाँ प्राण दोगे और मै भाग जाऊँगी?

(कल्याणी आगे बढ आती है । उसी समय एक मुगल-सिपाहीकी गोली लगनेमे अजयसिंह गिर पडते है ।)

कल्याणी—(दौडकर) भइया! भइया!

दूसरा सि०—यह कौन है? पकडो इसे!

तीसरा सि०—नही जी। सिपहसालार साहबका हुक्म है कि औरतो पर किसी तरहका जुल्म न किया जाय।

अजय०—कल्याणी! मै मरता हूँ! ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।

(अजयसिंह छटपटाकर मर जाते है ।)

कल्याणी—(रोती हुई) भइया! भइया! कहाँ चले।

[अजयसिंहकी लाश पर कल्याणी गिर पडती है ।]

चौथा सि०—और कहाँ जायँगे? वहीं, जहाँ एक दिन सबको जाना है।

कल्याणी—(शान्त होकर) नही, मै शोक नहीं करूँगी—क्षत्र-वीर! तुमने अपना कर्त्तव्य किया है। तुमने दीनों और असहायोंकी

रक्षामें अपने प्राण दिये हैं। और ये लोग? ये सब शैतानके दूत हैं! लहूके प्यासे हिंसक पशु हैं। ये बिना किसी अपराधके दूसरोंके घर जलाते हैं, बेचारे देहातियोंकी हत्या करते है।—इन लोगोंके लिए हे भगवन्! नरकमे भी स्थान नहीं मिले।

पहला सि०—इसमे हम लोगोका क्या कुसूर है? हम लोग तो अपने सिपाहसालारके हुक्मसे लोगोके घर जलाते है और उनकी जान लेते है।

कल्याणी—तुम लोगोका सिपहसालार कौन है?

दूसरा सि०—तुम्हे नहीं मालूम? महाबतखाँ साहब।

तीसरा सि०—चलो, जाने भी दो।

कल्याणी—क्या उन्हींका यह हुक्म है? ऐसा कभी नही हो सकता।

चौथा सि०—चलो, चलो।

कल्याणी—ठहरो मै भी चलूँगी।

पहला सि०—तुम कहाँ चलोगी?

कल्याणी—तुम्हारे सिपहसालार साहबके पास।

दूसरा सि०—तुम्हे वहाँ ले चलके क्या हम लोग—

तीसरा सि०—और नहीं तो क्या हम लोग—आफतमे पडेगे?

चौथा सि०—अरे वह खुद ही चलना चाहती है तो क्या हर्ज है? ले चलो।

पहला सि०—अच्छा चलो।

कल्याणी—चलो।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयपुरकी राजसभा । **समय**—प्रभात ।

[राणा, गोविन्दसिंह और सामन्त लोग ।]

रघुवर०—महाराज ! जहाँ तक हो सका, हम लोग लडे । पर अब और लडना असभव है ।

राणा—नही रघुबर ! हम अवश्य लड़ेंगे । हम कोई बाधा न मानेंगे,—एक भी न सुनेंगे । सेना तैयार है ?

केशव—महाराज ! सेना है ही कहाँ ? सारे मेवाडमेसे पॉच हजार सेना भी सग्रह की जा सकेगी या नही, इसमे सन्देह है । इतनी सेना लेकर क्या एक लाख सेनाके साथ लडना सम्भव है ?

राणा—असम्भव कुछ भी नहीं है । हमारी यह पॉच हजार सेना पॉच लाख सेनाके बराबर है ।

अजयसिह—महाराज ! इस समय मुगलोंके साथ सन्धि कर लेना ही उत्तम है ।

राणा—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता । जब हम सन्धि करना चाहते थे, तब किसीने हमारी बात न सुनी । उस समय मुगल स्वय सन्धि करना चाहते थे । पर अब वह समय निकल गया । अब हम प्रार्थना करके मुगलोंके साथ सन्धि नहीं कर सकते ।

केशव—किन्तु—

राणा—अब इस सम्बन्धमें कोई कुछ न कहो । अब कोई उपाय नहीं है । अब लडना और मरना ही पडेगा । क्यों गोविन्दसिंहजी ?

गोविन्द०—हाँ महाराज ! हम प्राण देंगे, पर मान न देंगे ।

राणा—आप ठीक कहते है गोविन्दसिंहजी ! प्राण देंगे, पर मान न देंगे ।

रघुवर—महाराज !—

राणा—नहीं अब हम कुछ भी नहीं सुनना चाहते। हम खाली युद्ध करना चाहते है—युद्ध। सेना सुसज्जित करो। मेवाड़की लाल ध्वजा उड़ाओ। रण-भेरी बजाओ। जाओ, तैयार हो जाओ।

[राणा अमरसिंहके अतिरिक्त और सब लोग चले जाते है।]

राणा—मेवाड—सुन्दर मेवाड ! आज हम तुम्हारा यह कैसा सौन्दर्य्य देख रहे है ! इसे तो पहले और कभी नही देखा था। तुम्हारे वस्त्र फट गये है, सारे शरीरमे धूल लगी है, बाल इधर उधर बिखरे हुए है। इसी वेषमे ये तुम्हे वध्य-भूमिकी और ले जा रहे है। माता ! यह तुम्हारा कैसा सौन्दर्य है ! आज इतने दिनो बाद हमने तुम्हे पहचाना है। इतने दिनो तक तुम्हारे सौभाग्य—सूर्य्यकी किरणोने तुम्हे ढँक रक्खा था, पर अब वह सूर्य्य ढल गया है। इसी लिए आज हम तुम्हारे उसी आकाशमे यह कैसा अपूर्व और अद्भुत प्रकाश निकलता हुआ देख रहे है ! यह कैसी ज्योति है ! कैसी नीलिमा है ! कैसी नीरव महिमा है !

छट्ठा दृश्य।

स्थान—महाबतखाँका डेरा। **समय**—प्रभात।

[महाबतखाँ और गजसिंह खड़े हुए है।]

गज०—राणा अपनी फौजको साथ लेकर लड़ने आये थे ?

महाबत०—हाँ महाराज ! पर वे लौटे अकेले ही। उनके पाँच हजार सिपाहियोंमेंसे चार हजार सिपाही मैदाने-जगमे काम आये।

गज०—सिर्फ पाँच हजार फौज लेकर एक लाख फौजसे लड़ने आये थे ? गजबकी हिम्मत है !

महाबत---हाँ, हिम्मत तो है ही। लेकिन महाराज ! आज मुझे एक बातका बहुत ही फक्र हो रहा है।

गज०---हाँ खाँ साहब ! फक्र करनेकी बात ही है।

महाबत०---लेकिन आप शायद इस बातका खयाल भी नहीं कर सकते कि मुझे फक्र क्यो हो रहा है। क्या आप उसकी वजह जानते है ?

गज०---फरमाइए।

महाबत०---मुझे इस लिए फक्र हो रहा है कि मैं मुसलमान होने पर भी इसी राजपूत कौमका हूँ और मै इन्हीं अमरसिहका भाई हूँ। जो शख्स पाँच हजार सिपाहियोको साथ लेकर हमारी एक लाख फौजके साथ लड़ने आया था, वह गोया अपनी जान ही देने आया था। अपने मुल्कके लिए ऐसी जान्-निसारी, ऐसी बे-खौफी और ऐसी हिम्मतका काम राजपूत ही कर सकते है। और मै भी उन्हीं राजपूतोमेसे हूँ।

गज०---बेशक, बेशक।

महाबत०---और आप भी तो वही राजपूत है, आप भी फक्र करे। लेकिन चूँकि आप गिर गये है इसलिए शर्मसे सिर भी झुकावे। आप गौर करे कि आप क्या हो सकते थे और क्या हो गये। मेरी बात छोड़ दीजिए। मेरे लिए कमसे कम इतनी जगह तो आँसू पोछनेके लिए है कि मै अब राजपूत नहीं हूँ। मैं किसी जमानेमे राजपूत था और आप अब भी राजपूत हैं।

गज०---लडाईमे राणा मारे नहीं गये, और कैद भी नहीं हुए ?

महाबत०---नहीं, मैने हुक्म दे दिया था कि वे मारे या कैद न किये जायँ। ऐसा दुश्मन दुनियाके फक्रकी चीज है। मै वह फक्र तोडना नहीं चाहता।

गज०—अच्छा, अब मुझे इजाजत हो।

महाबत०—हाँ हाँ, आप तशरीफ़ ले जा सकते है।

[गजसिंह जाते है।]

महाबत०—वे सामने जलते हुए गाँव दिखाई देते है। गाँववालोंकी रोने चिल्लानेकी आवाजे सुनाई पडती हैं। हिन्दुओ ! तुम लोग अपने मजहबका बडप्पन ले कर मरो। आज मैने तुम्हारी सारी शेखी किरकिरी कर दी !—सारा दंभ, सारा घमण्ड और सारा वैर पीस दिया ! तुम्हारी—

[चार सिपाहियोंके साथ कल्याणी आती है।]

महाबत०—यह कौन है ?

पहला सि०—खुदावन्द ! हम लोग इसे बिलकुल नहीं जानते। यह रास्तेमें मिली थी और खुद ही हम लोगोंके साथ यहाँ तक चली आई है।

महाबत०—(कल्याणीसे) तुम कौन हो ?

कल्याणी—मेरा परिचय पाकर आपको कोई लाभ नही होगा।

महाबत०—तुम क्या चाहती हो ?

कल्याणी—मैं आपके पास एक बातका न्याय करानेके लिए आई हूँ।

महाबत०—किस बातका न्याय ?

कल्याणी—आपके इन सिपाहियोने मेरे निर्दोष भाईकी हत्या की है।

महाबत०—तुम्हारे भाईकी हत्या की है ? किस प्रकार ? सिपाहियो !

पहला सिपा०—खुदावन्द ! हम लोग गाँववालोको कत्ल कर रहे थे। इस औरतका भाई उनकी तरफसे हम लोगोके साथ लडने लगा और उसी लड़ाईमें मारा गया।

महाबत०—(कल्याणीसे) क्या यह बात ठीक है ?

कल्याणी—हाँ ठीक है । आपके सिपाही बचारे गाँववालोंकी हत्या कर रहे थे । मेरे भाई उन्हे बचाने गये, तो इन लोगोने उन्हें भी मार डाला ।

महाबत०—तब तो वे लडाईमे मारे गये !

कल्याणी—ऐसा ही सही । इन लोगोने उन्हे लडाईमे मार डाला ।

महाबत०—तब देवी ! इसमे इन लोगोंका अपराध नहीं है । मैने इन लोगोको ऐसी ही आज्ञा दी थी । सिपाहियो ! तुम लोग बाहर जाओ ।

(सिपाही वहाँसे चले जाते है ।)

कल्याणी—क्या आपने बेचारे निरपराध गाँववालोकी हत्या करनेकी आज्ञा दी थी ?

महाबत०—हाँ, मैने हत्या करनेकी आज्ञा दी थी ।

कल्याणी—और गाँव जलानेकी भी ?

महाबत०—हाँ ।

कल्याणी—मुझे विश्वास नहीं होता । आप इतने निठुर नहीं हो सकते ।

महाबत०—मेरे सम्बन्धमें तुम्हारी ऐसी उच्च धारणाका क्या कारण है ?

कल्याणी—मेरे स्वामी ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते ।

महाबत०—तुम्हारे स्वामी !

कल्याणी—हाँ ! मेरे स्वामी । प्रभो ! अच्छी तरह देखिए, आप मुझे पहचान सकते हैं या नहीं ! मैं आपकी परित्यक्त हिन्दू स्त्री कल्याणी हूँ ।

महाबत०—कल्याणी ! कल्याणी ! तब क्या इन लोगोंने तुम्हारे भाई अजयसिंहकी हत्या की है ?

कल्याणी—हाँ! मैने जिस दिन आपका ध्यान करके, आपके प्रेमको अपने जीवनका ध्रुव तारा बनाके, अपनी छोटीसी नावको इस अनन्त संसार-समुद्रमे छोड़ा था, उस दिन मेरे भाई अजय बहुत ही आनन्दपूर्वक अपनी इच्छासे मेरी रक्षा करनेके लिए इस दु.खमे मेरे साथी हो गये थे। रास्तेमे आपके कुछ दुष्ट सिपाहियोंसे एक बार मुझे बचाते समय वे बुरी तरह घायल होगये थे। मैंने बहुत दिनो तक एक टूटी फूटी कुटीमे रहकर उनकी सेवा की थी और पासके गाँवोंसे भीख माँग माँग कर उन्हे खिलाया और बचाया था। आपने मेरे ऐसे भाईके प्राण ले लिए। नाथ! अब मै भी क्यों बची रहूँ? मुझे भी बध कर डालिए।

महाबत०—नहीं नही, तुम मुझे क्षमा करो।

कल्याणी—क्या इतने गॉववालोंकी हत्या आपकी ही आज्ञासे हुई है?

महाबत०—हॉ, मेरी ही आज्ञासे हुई है। मैने अपने सिपाहियोको राजपूत-जातिका नाश करनेकी आज्ञा दी थी।

कल्याणी—हे ईश्वर! तुमने यह क्या किया? यही मेरे आराध्य देवता है! इन्ही घातकका ध्यान करके मैं सन्यासिनी हुई थी! क्या मेरे लिए मृत्यु भी नही थी! भगवन्! मैं एक ही दिन एक ही साथ स्वामी और भाई दोनोको खो बैठी! आज मेरे समान अभागिनी कौन होगी! हाय! (मुह ढँक लेती है।)

महाबत०—लेकिन तुम जानती हो कि मैने क्यों—

कल्याणी—नहीं प्रभो! और मै यह जानना भी नहीं चाहती। मेरा मोह भग हो गया। मै इतने दिनो तक आपकी पूजा करती थी, पर आजसे मैं आपको परम शत्रु समझती हूँ। मैं मुगलोंको

उतना शत्रु नहीं समझती जितना आपको समझती हूँ । मुगल हमारे कोई नही है । उनका धर्म्म उन्हे इस बातकी शिक्षा देता है कि वे काफिरोंका वध करे । लेकिन आप तो इस देशकी सन्तान है, आपकी नसोंमे तो विशुद्ध राजपूत-रक्त है । आप भी तुच्छ धनके लोभसे और विद्वेषसे, अपनी जातिका नाश करने लग गये ! नाथ ! मै क्या कहूँ ! आप मुगलोसे भी बढ गये । वे केवल मेवाड जीतना चाहते है, बेचारे गरीब देहातियोंके घर फूँकना नहीं चाहते । पर आप उनकी कमी भी पूरी कर रहे है । आपने उनके धर्म्मकी जूठन खाकर, अपने इन हत्यारे सैनिकोको—इन घृणित मास-लोलुप नर-कुक्करोंको—बेचारे गॉववालो पर छोड दिया है । आपने मेवाडको श्मशान बना दिया है । निर्दोष मनुष्योंके हाहाकारसे सारा आकाश गूँज रहा है । पर मुगलोंकी ऐसी इच्छा कभी नहीं थी । हे ईश्वर ! क्या एसे देश-द्रोहियोंके लिए तुम्हारे यहाँ कोई दण्ड नहीं है ? हाय ! अब भी इन पर आकाशसे वज्र क्यो नहीं गिरता !

महाबत०—— कल्याणी ! मै इस युद्धमे केवल तुम्हारे कारण प्रवृत्त हुआ हूँ ।

कल्याणी——मेरे कारण ? झूठ ।

महाबत०——नही, झूठ नहीं सच । मैने जिस दिन सुना कि तुम्हारे पिताने मुसलमानोंके साथ घृणा करनेके कारण तुम्हे घरसे निकाल दिया, उसी दिन, उसी समय मैने मेवाडके विरुद्ध अस्त्र धारण किया ।

कल्याणी——यदि यह बात मान भी ली जाय, तो भी आप धर्म्मके किस सिद्धान्तके अनुसार एक मनुष्यके अपराधके कारण सारी जातिका नाश करनेके लिए तुल गये ?

महाबत०——इसमे क्या तुम्हें आश्चर्य्य होता है ! क्या एक रावणके पापके कारण सारी लंका ध्वस नहीं हुई ? और फिर मुसलमानोंके

साथ यह विद्वेष अकेले तुम्हारे पिताका ही तो नहीं है। तुम्हारे पिताने तो समस्त मुसल्मानोंके प्रति जो समस्त हिन्दुओका विद्वेष है, उसे प्रकट किया था। मैं हिन्दुओंके उसी जातिगत विद्वेषका बदला लेने आया हूँ।

कल्याणी—लेकिन मुगल-सेनापति! इसका बदला यदि कोई लेना चाहे तो वह जातिका मुसलमान ही ले सकता है। आप जब स्वयं मुसल्मान हुए थे, तब हिन्दुओंका यही मुसलमान-विद्वेष जान कर मुसलमान हुए थे। नाथ! आपने अपनी यह दशा आप ही बनाई है। आप वृथा क्यो यह समझकर अपने मनको प्रबोध देते हैं कि आप एक अन्यायका प्रतिकार करने बैठे है? आपमें जो कुछ मुसल्मान-पन है, वह आपसे यह काम नहीं करा रहा है, बल्कि आपमे जो अहम्मति—महाबतखाँपन—है वही आपसे यह काम करा रहा है।

महाबत०—(कुछ कुछ स्वगत) है! क्या यह बात ठीक है!

कल्याणी—आप उसी व्यक्तिगत द्वेषके कारण मेवाडका नाश करने पर उतारू हुए हैं। यही आपका धर्म्म है! यही आपकी शूरता है! यही आपका मनुष्यत्व है! हे ईश्वर! यह तुमने क्या किया! मैं इतने दिनो तक हवामे महल बना रही थी, आज तुमने उसे मिट्टीमे मिला दिया।

महाबत०—कल्याणी—

कल्याणी—बस बस! अब मेरा मोह भग हो गया! मैंने समझा था कि आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपकी स्त्री हूँ। इसी लिए मैंने एक दिन बडे अभिमानसे कहा था—"हम लोगोंको कौन अलग कर सकता है?" लेकिन नहीं, अब मैं देखती हूँ कि आपके और मेरे बीचमें

एक बड़ा भारी समुद्र है। हम दोनोंके बीचमे मेरे भाईका मृत-शरीर पड़ा हुआ है; और उससे भी बढ़कर हम दोनोके बीचमें मेरे स्वदेशके रक्तकी नदी बह रही है। निठुर, देशद्रोही, लहूके प्यासे, हत्यारे! ऊ!--हे ईश्वर! हे विधाता! ऐसे नीच, हिंस्र, अपने भाइयोंकी हत्या करनेवाले, और मुट्ठीभर जूठनके भिखारियोका विकट अट्टहास सुनकर कहीं अन्तमें तुम परसे भी मेरा विश्वास न उठ जाय!

[कल्याणी चली जाती है।]

पाँचवाँ अंक।

पहला दृश्य।

स्थान--उदयपुरका राजप्रासाद। **समय**--रात।

[मानसी अकेली गाती है।]

सोहनी।

प्यारे कहि न सकी कछु हाय
कितनी मैं चाहति तोहि पीतम
सकी न सोउ बताय॥
लागी कहन, गरौ भरि आयो
मौन रही पछताय।
मनकी बात रही है मनमें
करौं सु कौन उपाय॥
मुँह नहिं खुल्यो फटति जो छाती
तौ मैं देति दिखाय।
तेरी मोहन मूरत मेरे
हियमें रही समाय॥

[राणा आते हैं ।]

मानसी—पिताजी ! आप युद्धसे लौट आये ?

राणा—हाँ बेटी !

मानसी—क्यों ? क्यों ? क्या हुआ पिताजी ?

राणा—चुप रहो, चुप रहो। बोलो मत। मैने एक बड़ी ही अद्भुत, अतुल और आश्चर्य्य-जनक बात देखी है।

मानसी—क्या देखा ? युद्ध—

राणा—नहीं मानसी ! इस बार युद्ध तो हुआ ही नही। युद्ध-क्षेत्रमे केवल एक आग बरसने लगी और उसीमे हमारी सारी सेना जल गई।

मानसी—कैसे ?

राणा—हम कुछ भी न समझ सके। न जाने वह क्या था ! मानो वह इस जगतका कुछ नहीं था। ऐसा मालूम होता था कि उल्कावृष्टि हो रही है ! अभिशापका एक भयंकर पूर आ रहा है ! हमने क्षण भरके लिए आँखे बन्द कर लीं। हमारे शरीर परसे होकर मानो हृत्कम्पकी बिजलीसी निकल गई, एक बार मस्तिष्क चकरा गया। हम कुछ भी समझ न सके। जब आँखे खुली तो मालूम हुआ कि मानों हम सो कर उठे हैं। रण-क्षेत्रमे हम अकेले ही रह गये, और कोई दिखाई न पड़ा ! चारो ओर लाशोंके ढेर लगे हुए थे। ओह ! वह कैसा दृश्य था !

मानसी—पिताजी ! जान पड़ता है, आप कुछ उत्तेजित हो गये हैं। बैठ जाइए, मै आपकी कुछ सेवा करूँ।

राणा—हम उसी श्मशानमें अकेले घूमने लगे, लेकिन किसीने हम पर वार नहीं किया।

मानसी—क्या इस युद्धमे आपने अपनी हार मान ली ?

राणा—हमारे हार मानने न माननेसे कुछ होता जाता नहीं। युद्ध कोई तर्क नहीं है जिसमें हार न माननेसे ही जीत हो जाय। यह तो स्थूल, कठिन और प्रत्यक्ष सत्य है—बहुत ही प्रत्यक्ष सत्य है। परन्तु न जाने क्यो हमे उन लोगोंने मारा नहीं! हम उस महा श्मशानमें 'महाबतखाँ—महाबतखाँ' 'गजसिंह—गजसिंह' चिल्लाते फिरे, पर कोई हमारे पास न आया। तुम बतला सकती हो कि क्यो कोई हमारे पास नहीं आया मानसी ?

मानसी—पिताजी! आप क्षुब्ध न हो—

राणा—हाँ, एक और बात हमारी समझमे नहीं आती। महाबतखाँ युद्धमें जीत तो गये, पर तो भी न जाने क्यो वे गर्वपूर्वक उदयपुर दुर्गमे अभी तक प्रवेश नहीं कर रहे हैं! अब तो यही बाकी है कि वे आकर दुर्ग पर अधिकार कर लें।

मानसी—पिताजी! आप हार गये तो हार गये। इसमें दु:ख काहेका ? युद्धमे किसी एक पक्षकी हार तो होती ही है।

राणा—बेटी, तुम ठीक कहती हो। कोई न कोई पक्ष तो हारेगा ही। तब दु:ख काहे का ?—नहीं मानसी, हमे भी इसका कोई दु:ख नहीं है। पर उन लोगोने आकर हमे वध क्यों नहीं किया ?

[रानी आती है।]

राणा—(रानीसे) बड़ी भारी समस्या उपस्थित है। तुम कुछ बतला सकती हो ?

रानी—क्या ?

राणा—हमे उन लोगोंने वध क्यो नहीं किया ?

[रानी मानसीकी ओर देखती है ।]

राणा—सुनो उस गम्भीर निशामे, उस युद्धक्षेत्रमे, उस मुरदोंके ढेरमे हम अकेले खडे थे । वह भी कैसा दृश्य था! तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती । ऊपर आकाशमे अनन्त निश्चल तारे,—और नीचे पृथ्वी पर अगणित मुरदे। उन दोनोके बीचमे और कुछ भी नही,—केवल घोर अन्धकार। हमे ऐसा जान पडता था कि इस जगतसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नही है । मानो हम भी मर गये है, और मानो हम 'जीती जागती मृत्यु' है। उस युद्धक्षेत्रमें हमने तलवार निकाल कर चलाई, पर वह केवल उस रातकी ठडी हवाको ही काट कर रह गई। हमने पुकारा—'महाबत' पर वह ध्वनि चारो ओर व्यर्थ ढूँढकर लौट आई। इसके बाद (स्वर भग्न हो जाता है) हमने एक बार उस युद्ध-क्षेत्रमें चारो ओर दृष्टि दौडाई, तब उन्ही नक्षत्रोंके प्रकाशमे हमने देखा कि हमारा सोनेका राज्य किसी भारी भूकम्पसे बिलकुल नष्ट भ्रष्ट होकर पडा है । (धीमे स्वरसे) इसके उपरान्त उस महा श्मशानकी खुली हुई हवा मानो मृत सैनिकोकी देहमुक्त आत्माओके बोझसे भारी जान पडने लगी । बडे कष्टसे हमने एक गहरी साँस ली । वह सांस भी ऊपर अकाशकी ओर न जाकर अपने बोझेके कारण जमीन पर ही गिर पडी । हम समझते है, यदि उस समय वहाँ उतना अन्धकार न होता तो वह ढूँढ़नेसे अवश्य मिल जाती ।

रानी—जो होना था सो हो गया। अब सोच करनेसे क्या होगा? मैंने तो पहले ही कह दिया था ।

राणा—हाँ, तुमने ठीक कहा था । मेवाड मर गया और हम खडे हुए देखते रहे । हम उसे कन्धेपर उठाकर यहाँ ले आये हैं । आओ, देखोगी !

दूसरा दृश्य ।

स्थान—मेवाडके अन्त पुरके अन्दरका एक छोटासा रास्ता ।

समय--रात ।

[दो दासियाँ बातचीत करती हुई आती है ।]

पहली दासी—हाय ! बूढ़े गोविन्दसिहजीके दु खका पार नही रहा । बेचारोके एक ही लडका था ।

दूसरी दासी—जो हो, पर चारणी रानी लाशको गोविन्दसिहके घर तक क्यो ले आई, सो वे ही जाने ।

पहली दासी—उनके सभी काम ऐसे बेढब होते है । मानो उन्हे और कोई काम ही नही था । क्या वहाँ बहुतसे लोग जुटे है ?

दूसरी दासी—हो, सारा आँगन भर गया है । गोविन्दसिह घरमे नहीं है । चारणी रानीके लडके अरुणसिंह उन्हे बुलाने गये है । मैने देखा कि उसी आँगनमे लाशके पास रानी अकेली खडी है । और सब लोग दूर थे ।

पहली दासी—अँधेरेमे ?

दूसरी दासी—अँधेरा ही था, दूर एक कोठरीमे एक दीआ अवश्य टिमटिमा रहा था । यह कौन ?

पहली दा०—कहाँ ?

दूसरी दा०—देखती नहीं हो ? वह ।

पहली दा०—वे तो राजकुमारी है । देखो न कैसी दशा है ! आँखें ऊपर चढ गई हैं । आँचल गिरकर मिट्टीमे घसिटता जाता है । दोनो हाथोकी मुट्ठियाँ बँधी है ।

दूसरी दा०—लो, वे तो इधर ही आरही है । चलो, हम लोग चलें ।

[दोनों एक ओर चली जाती हैं । दूसरी ओरसे मानसी आती है ।]

मानसी—गये ! अजय भी सदाके लिए गये ! मुझसे न तो मिले और न कुछ कहा ही, और चले गये! पर क्या यह ठीक है ? ओह ! मेरा सिर घूमता है । आँखोंके सामने पीले पीले बिम्ब पृथिवीसे उठते है और ऊपर जाकर नष्ट हो जाते है । शरीरमेंसे कोई तरल ज्वाला निकल रही है। सिरके ऊपरसे आकाश हट गया है, पैरोंके नीचेसे पृथ्वी निकल गई है । मैं कहाँ हूँ ! हाय ! (थोड़ी देर तक चुप रहनेके उपरान्त धीरे धीरे) मै बडी ही निठुर हूँ । कभी मुँहसे बात भी नहीं की । उस दिन जब अजयने मेरी कणमात्र अनुकम्पाका भिखारी बन कर दीन नेत्रोंसे मेरी ओर देखा था, जब वे केवल एक बार मेरे करुण-दृष्टिसे देखनेके लिए मरे जा रहे थे, तब भी मै उनसे न बोली। इसीसे मेरे अजय रूठ करके चले गये है। मेरे उसी अभिमानको चूर्ण करके, पैरोंसे रौंध करके वे चले गये है । अजय ! आज तुम्हारे पैरों-पर लोटनेको जी चाहता है, आज तुम्हे अपना हृदय चीरकर दिख-लानेकी इच्छा होती है । पर हाय ! अब समय नहीं है !

[मानसी चली जाती है ।]

तीसरा दृश्य ।

स्थान—गोविन्दसिंहके घरका आँगन ।

समय—रात ।

[खूब तेज हवा चल रही है । अजयसिंहकी लाश पडी है । पास ही सत्यवती और चार उठानेवाले खडे है । गोविन्दसिंह टक लगाकर लाशकी ओर देख रहे हैं ।]

गोविन्द०—यही मेरे पुत्र अजयसिहका मृत शरीर है ! सत्यवती, यह तुम्हें कहाँ मिला ?

सत्यवती—रास्तेके किनारे ।

गोविन्द०—इसकी मृत्यु किस प्रकार हुई ?

सत्य०—जो लोग आसपास खडे हुए थे उनसे मालूम हुआ कि महाबतखाँके सिपाही बेचारे गाँववालोंकी हत्या कर रहे थे। इसलिए अजयसिह उनको बचानेके लिए गये और वहीं मारे गये। और कल्याणीको सिपाही पकडकर ले गये।

गोविन्द०—बेटा अजय ! तुमने मुझे क्षमा माँगनेका भी अवसर न दिया ! मै क्रोधसे अन्धा हो गया था, इसीसे तुम घर छोड कर चले गये और मैने तुमसे कुछ भी न कहा। हाय मैंने तुम्हें बुला क्यो न लिया ! जाने ही क्यों दिया ! हाय, बेटा अजय ! प्राणोसे भी प्यारे अजय ! तुमने मुझे क्षमा माँगनेका भी अवकाश न दिया! इतना अभिमान ! इतना रूठना !—यह तुम्हारा बूढा बाप था!—अजय! अजय!—

सत्य०—गोविन्दसिंहजी, इसमे दु:ख काहेका ? अजयने तो दीनोकी रक्षामें प्राण दिये है।

गोविन्द०—हाँ सत्यवती, तुम सत्य कहती हो। अजयने दीनोंकी रक्षामे प्राण दिये है—असहायोकी सहायता करते हुए प्राण त्यागे है, तब फिर दु:ख काहेका ? जाओ, अच्छी तरह दाहकर्म्म करो।

[गोविन्दसिंह लाशका मुहँ ढँकते है। उठानेवाले अजयसिंहका शव उठाना चाहते हैं।]

गोविन्द०—ठहरो, मुझे एक बार और देख लेने दो। हाय मेरे सर्वस्व ! बूढेके बल ! अन्धेकी लकडी ! मेरे प्यारे बेटे ! एक बार—नहीं नहीं दु:ख काहेका ? सत्यवती तुम ठीक कहती हो, अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं। मेवाड़भूमि ! राक्षसी ! इतने लोगोंके प्राण लेकर भी तेरा पेट

न भरा ! तू तो जानेके लिए तैयार बैठी है, पर जान पडता है सबको खाये बिना न जायगी ! हाय ! मेरा सोनेका ससार माटी हो गया—नहीं ! नहीं ! कौन कहता है कि मेरा अजय मर गया ! वह मरा नहीं है । देखो, मेरी ओर देख रहा है ! वह तो अभी जीता है ! अजय ! अजय !

[गोविन्दसिंह अजयके मृत शरीरकी ओर बढते है । सत्यवती बीचमें आकर खडी हो जाती है ।]

सत्य०—गोविन्दसिहजी, शोकसे पागल न हो जाओ । तुम्हारा पुत्र अब इस ससारमे नहीं है ।

गोविन्द०—नहीं है ! पुत्र नहीं है ! ठीक कहती हो, पुत्र नहीं है ! मैं भूलता हूँ !—अजय ! अजय ! मेरे सर्वस्व, अजय ! (मुँह ढँक लेते हैं ।)

सत्य०—गोविंदसिंहजी, तुम वीर हो। पुत्र-शोकसे इतना अधीर होना तुम्हे शोभा नहीं देता ।

गोविन्द०—क्या कहा सत्यवती, जरा और जोरसे बोलो । मुझे सुनाई नहीं पडता। मेरे भीतर भयकर आँधी चल रही है । उसके मारे कुछ सुनाई नहीं पडता । ओ हो हो हो (अपनी छाती पकड लेते हैं ।)

[कल्याणी आती है ।]

कल्याणी—पिताजी ! पिताजी !

गोविन्द०—कौन बुलाता है ? कल्याणी ? सर्वनाशिनी, देख अपनी करतूत ! राक्षसी ! मेरे अजयको तूने ही खाया है। दे, अब लाके मुझे दे ।

कल्याणी—हाय, भइया ! भइया !

[अजयसिंहके मृत शरीरसे चिपट जाती है ।]

गोविन्द०—चल, दूर हट ! मेरे अजयको मत छू ! हट जा, डाइन !

[कल्याणीका हाथ पकड कर झटकार देते हैं ।]

कल्याणी—(उठकर) पिताजी, मै सचमुच ही डाइन हूँ। मुझे मार डालो ! मेरा नाम कल्याणी किसने रक्खा था ? पिताजी, मै आपके घरमे अकल्याणकी शिखा हूँ,—मेवाडके लिए धूमकेतु हूँ,—पृथ्वीका सर्वनाश करनेवाली हूँ। मुझे मार डालो। इस सर्वनाशिनीको ससारसे दूर कर दो। बस फिर आपको सब कुछ मिल जायगा। मुझे मार डालो ! मार डालो !–

[गोविन्दसिंहके सामने सिर झुकाकर बैठ जाती है।]

गोविन्द०—मेरे हृदयमे यह क्या हो रहा है ! यह नरककी दाह है–पिशाचका नृत्य है ! अब तो नहीं सहा जाता ! हे जगदीश ! अब नहीं सहा जाता !

सत्य०—गोविन्दसिंहजी, दु'खसे अधीर मत होओ। अपने वीर पुत्रका दाह-कर्म्म गौरवसहित करो। तुम्हारे पुत्रने दीनोकी रक्षामें प्राण दिये है।

गोविन्द०—सच कहती हो ! तुम सच कहती हो ! मेरे पुत्रने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये है। अब मै दु ख न करूँगा। मुझे क्षमा करो बेटी, यह तो मेरे गौरवकी बात है। पर—(रोते हुए) सत्यवती, अब मै बहुत बूढ़ा होगया हूँ !—बहुत ही बूढा होगया हूँ !

कल्याणी—पिताजी—

गोविन्द०—(काँपते हुए स्वरसे) आओ बेटी कल्याणी ! मेरी गोदमें आओ ! आओ मेरी घरसे निकाली हुई, पतिद्वारा त्यागी हुई, मातृहीना, अभागिनी कन्या ! आओ। मैंने सती साध्वीका अपमान किया था, इसी लिए ईश्वरने मुझे यह दण्ड दिया है। जाओ, तुम लोग इस मृत देहका दाह-कर्म्म करो।

[लोग मृत शरीरको उठाना चाहते है, इतनेमें वहाँ तेजीसे राजकुमारी मानसी आती है । उसके बाल खुले हुए है और वस्त्र अस्तव्यस्त हैं ।]

मानसी—ठहरो, जरा मुझे भी देख लेने दो ।

सत्य०—कौन ! राजकुमारी !

मानसी—अजय ! प्रियतम ! मेरे जीवन-सर्वस्व ! मेरे स्वामी !

सत्य०-यह क्या राजकुमारी, तुम्हारे स्वामी !

मानसी—अच्छा, तब सब लोग सुन लो ! आजतक मैंने यह बात किसीसे नही कही थी, पर आज कहती हूँ । अजयसिंहके साथ मेरा विवाह हो गया था, पर उसका हाल कोई नहीं जानता था—यहाँ तक कि स्वयं मै भी नही जानती थी । चुपचाप, बिना किसीके जाने हुए, आत्मा ही आत्मामे यह विवाह हुआ था ।—प्रियतम ! कहाँ चले ! देखो मै आई हूँ । आज मै तुम्हारी वह प्रगल्भा गुरु नहीं हूँ, दयामयी राजकुमारी नहीं हूँ, आज मै तुम्हारी प्रेम-भिखारिणी एक दुर्बल स्त्री हूँ ! आज मै दीनतम भिखारिणीसे भी दीन हूँ । अजय ! मैंने आज तक तुमसे नही कहा कि मै तुम पर कितना प्रेम करती हूँ ! मै पहले यह समझ ही नही सकी थी ! मुझे क्षमा करो ।

सत्य०—हाय ! राजकुमारी भी शोकसे उन्मत्त होगई है !—मानसी ! शान्त होओ । अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये है——

मानसी—सच कहती हो । प्राण इसी प्रकार देने चाहिए । मेरे प्यारे शिष्य ! आज तुमने मेरे गुरुका स्थान ले लिया है ! तुम्हारे गौरवकी रश्मि परलोकको व्याप्त करके इस पृथ्वीपर आ लगी है ! यदि मरना हो तो बस इसी तरह मरना चाहिए ! वृद्ध गोविन्दसिंहजी ! आप धन्य हैं जो ऐसे पुत्रके पिता होनेका अभिमान कर सकते हैं ! धन्य

हूँ मै, जिसके ऐसे पति है ! गोविन्दसिहजी !—यह हम लोगोके गर्व करनेका समय है, शोक करनेका नही।

गोविन्द०—(सूखे हुए गलेसे) राजकुमारी ! अजयने दीनोकी रक्षामे प्राण दिये है। दु ख काहेका ? (भग्न स्वरसे) अजयने देशके लिए——(आगे उनसे बोला नही जाता। वे दीवार पर दाहिना हाथ टेक कर उस पर अपना सिर रख देते है। रोते रोते हिचकी बँध जाती है।)

मानसी—व्यर्थ ! व्यर्थ ! व्यर्थ ! भीतरसे शोकका प्रबल उच्छ्वास उठता है जो सारी सान्त्वनाओको ढँक देता है ! अब तो नही सहा जाता।—अजय ! अजय !—

कल्याणी—यह सब क्या हो रहा है ! कुछ समझमे नही आता। यह स्वर्ग है या मर्त्य ! ये सब देवता है या मनुष्य ! यह जीवन है या मृत्यु ? मै कौन हूँ ? ऊ —

[मूर्छित होकर गिर पडती है।]

सत्य०—कल्याणी ! कल्याणी !

गोविन्द०—लडकी मर रही है, मरने दो। हम सब लोग साथ ही जायँगे–पुत्र, कन्या, मैं, मेवाड,–सब साथ ही जायँगे। पुत्र गया, कन्या गई, यह मेवाड–मेरा प्यारा मेवाड–सो भी डूब रहा है–डूब रहा है–वह डूबा ! चलो, मै भी चलूँ।

[पागलोंकी तरह दौडते हुए निकल जाते है।]

सत्य०—मात्रा पूर्ण हो गई ! अब तो प्रलय होनी चाहिए !

———— ——

चौथा दृश्य ।

स्थान—मेवाडकी एक घाटीमे महाबतखाँका खेमा ।

समय—सन्ध्या ।

[महाबतखाँ खेमेके बाहर खडे हुए पहाडोंपर
अस्त होनेवाले सूर्य्यकी किरणें पडती
हुई देख रहे है ।]

महाबत०—चलो, अस्त हो गया—

[महाराज गजसिंह आते है ।]

गज०—खाँ साहब !

महाबत—आइए, महाराज !

गज०—आपने फतह पाई है, पर आप अपनी फौजके साथ उदयपुरमे दाखिल क्यो नहीं होते ?

महाबत०—क्या आप मुझसे इसकी कैफियत तलब करते हैं ?

गज०—नहीं, मैने सिर्फ यो ही पूछा था। खाँ साहब, सुना है कि इस बार मेवाडकी औरतोंने भी हथियार उठाये है ।

महाबत०—औरतोने हथियार उठाये है !—औरतोंने ?

गज०—जी हाँ औरतोंने । अब देखिए, वे किस तरहकी लडाई करती है । अबकी बार इस लडाईमे कुछ कोमल भाव तो जरूर ही आवेगा । मैं भी इस लडाईमे जाऊँगा ।

महाबत०—महाराज, आप राजपूत होकर भी राजपूत औरतोंके बारेमें ऐसा बाहियात मजाक करते हैं ! क्या आप सचमुच राजपूत हैं ? नही—

गज०—खाँ साहब !—

महाबत०—जाइए, जाइए, अपनी यह बहादुरी अपने मुल्कके लिए रख छोडिए । कभी काम आयगी ।

[गजसिंह जाते हैं ।]

महाबत०—ये ही सब हजरत हिन्दू धर्म्मका झण्डा उडाते हैं। हिन्दुओ! तुम लोग अपना मुल्क तो खैर, हारे ही थे, पर साथ ही साथ तुम लोगोने अपनी आदमीयत भी खो दी!

[एक सिपाही आता है।]

महाबत०—क्या खबर है?

सि०—शाहजादा साहब मय फौजके तशरीफ लाये है।

महाबत०—आ गये?—अच्छा जाओ।

[सिपाही चला जाता है।]

महा०—अब और फौज लेकर आनेकी तो जरूरत नहीं थी। मेवाडको तो मै खतम ही कर चुका था। लेकिन हाँ, मै मुगलोकी फौजको लेकर उदयपुरके किलेमे नही जाना चाहता था, सो अब यह काम शाहजादा साहब—मुगल, खुद कर लेंगे। मेरा काम यहीं खतम हो जाता है।

[गोविन्दसिह आते हैं।]

महा०—आप कौन है?

गोविन्द—मै मेवाडका एक सरदार हूँ।

महा०—यहाँ क्यों आये?

गोविन्द—बतलाता हूँ, जरा साँस ले लेने दो।

महा०—क्या आपको राणा अमरसिंहने सन्धि करनेके लिए भेजा है?

गोविन्द—ऐसा होनेसे पहले मुझ पर बिजली टूट पड़े!

महा०—तब फिर आप क्या चाहते है?

गोविन्द—मै मरना चाहता हूँ। मै बहुत बूढा हो गया हूँ, मरना चाहता हूँ। मै लडकर मरना चाहता हूँ, पर किसी मामूली सिपाहीसे लडकर नहीं मरना चाहता। मै तुम्हारे हाथसे मरना चाहता हूँ। तुम्हारे साथ युद्ध करके मरूँगा।

महाबत०—आप पागल तो नहीं हो गये है ?

गोविन्द—नहीं महाबत, मै पागल नहीं हूँ। तुम समझते होगे कि मै द्वन्द्व युद्ध करके तुम्हे वध करनेके लिए आया हूँ।—हे ईश्वर! यदि इस समय मुझमे इतनी शक्ति होती! नहीं महाबतखाँ, मैं जानता हूँ कि आज द्वन्द्व युद्धमे मै तुमसे जीत न सकूँगा, पर हाँ, मै मर सकूँगा। मै तुम्हारे हाथो मरना चाहता हूँ।

महा०—यह बड़ी अद्भुत इच्छा है!

गोविन्द—इसमे अद्भुतपना तो कुछ नही है। मैने स्वर्गीय राणा प्रतापसिहके पास रहकर कमसे कम पचास युद्ध किये है। मेरे शरीरमें घावोंके न जाने कितने चिह्न है। अब अन्तिम घाव तुम्हारी तलवारके आघातसे होना चाहिए।

महा०—इससे आपका लाभ क्या होगा ?

गोविन्द—लाभ तो कोई ऐसा विशेष नहीं है, पर तुम धर्म्मके मुसलमान होने पर भी जातिके हिन्दू हो, और राणा प्रतापसिहके भतीजे हो। इसलिए तुम्हारे हाथसे मरनेमे जरा गौरव है।

महा०—आप क्या सालुबराके ठाकुर गोविन्दसिहजी है ?

गोविन्द०—ह-ह-ह। पहचान लिया महाबतखाँ? अब तो समझ गये न कि मैं क्यो तुम्हारे हाथों मरना चाहता हूँ ? महाबतखाँ, आज तुमने मेवाडको जीता है—मेवाड़को ध्वंस किया है। पर तो भी मै तुम्हें उदयपुरके दुर्गमें प्रवेश न करने दूँगा। मेवाडमें अब सेना नहीं है।—अब तुम्हे युद्ध नहीं करना पडेगा। मैं मेवाडका आन्तिम वार हूँ। आज मैं अकेला ही मुगलोको उदयपुरमे जानेसे रोकनेके लिए खडा हूँ। बिना मेरे प्राण लिये तुम उदयपुरके दुर्गमें प्रवेश न करने पाओगे। अस्त्र उठाओ!

[गोविन्दसिंह तलवार खींच लेते है ।]

महाव्रत०—लेकिन वीरवर ! मै तो उस दुर्गमे प्रवेश ही नही करना चाहता ।

गोविन्द०—चाहे तुम प्रवेश करना चाहो और चाहे न चाहो, मेरे लिए दोनो बराबर है ।—लो, अस्त्र उठाओ ।

महाव्रत०—सुनिए—

गोविन्द—नहीं नही, मै कुछ भी नहीं सुनना चाहता । मेरे अन्दर बडी तेज आग जल रही है । मेरा पुत्र नही रहा—कन्या नहीं रही, अब मै मरना चाहता हूँ । अपने स्वाधीन मेवाडको मुगलों द्वारा पद-दलित होता हुआ देखनेसे पहले ही मै मरना चाहता हूँ । और मै उसीके हाथसे मरना चाहता हूँ जो दामाद होने पर भी मेरे पुत्रकी हत्या करनेवाला है, जो हमारे देशकी सन्तान होकर भी दूसरोका गुलाम है, जो हमारे धर्म्मका होकर भी मुसलमान है, जो हमारे राजाका भाई होकर भी उनका शत्रु है । महाबत, अस्त्र उठाओ !

महा०—(तलवार खींचकर) आप शान्त हो जायँ ! मै आपको कभी न मारूँगा ।

गोविन्द०—मैं कुछ नही सुनना चाहता । अपनी रक्षा करो ।

महा०—गोविन्दसिंहजी,—

गोविन्द०—मुझे मारो—मारो—

महा०—मै अस्त्र रख देता हूँ ।

गोविन्द०—महाबत, मै तुम्हे नहीं छोड़ूँगा । अस्त्र लो । आज मै मरनेके लिए आया हूँ, अवश्य मरूँगा । अस्त्र लो । मैं नहीं छोड़ूँगा ।

[गोविन्दसिंह आक्रमण करना चाहते है । इतनेमें पीछेसे
गजसिंह आकर गोविन्दसिंह पर गोली चलाते है ।
गोविन्दसिंह गिर पडते है ।]

महा०—यह क्या ? महाराज, यह आपने क्या किया ?

गज०—इसे मार डाला।

महा०—आप जानते है, ये कौन है ?

गज०—क्यो ? कोई डाकू होगा।

गोविन्द—गजसिंह, मै डाकू नही हूँ--डाकू आप है। दूसरोका राज्य लूटनेके लिए मै नहीं आया हूँ, आप आये है। महाबतखाँ ! जाओ, अब तुम उदयपुर जाओ। अब तुम्हे कोई न रोकेगा। अपनी माताको पकडकर मुगलोकी दासी बनाओ। सन्तानका कर्तव्य पूरा करो। अजय !—कल्याणी !

[गोविन्दसिंह छटापटाकर मर जाते है ।]

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—उदयपुरके दुर्गके सामनेका एक रास्ता।

समय—रात।

[एक दुर्गरक्षक राजपूत सैनिकके साथ कई नागरिक बाते कर रहे है।]

पहला ना०—क्यो जी, हमारे महाराज दुर्गसे आज बाहर क्यों गये ?

सै०—क्यो गये है, यह तो नहीं मालूम, पर इतना सुना है कि सेनापति महाबतखाँने मेवाडके विरुद्ध हथियार रख कर बादशाहको एक पत्र लिख भेजा था। इसी लिए अबकी शाहजादा खुर्रम लडने आये है। एक मुगलदूत शाहजादेके यहाँसे एक पत्र लेकर आया था। सुनते है, उसी पत्रमें उसने मेल करनेकी इच्छा प्रकट की थी। मुगल-दूतके चले जानेपर उसके दूसरे दिन—आज सबेरे राणाजी घोडेपर सवार होकर शाहजादेके खेमेकी ओर गये है।

दूसरा ना०—फिर क्या हुआ ?

सै०—इसके आगे क्या हुआ, सो मुझे नहीं मालूम।

तीसरा ना०—क्या राणाजी अभी तक लौट कर नहीं आये ?

सै०—नही।

चौथा ना०—उनके साथ और कौन गया है ?

सै०—कोई नही। वे अकेले गये है।

पहला ना०—देखो, वे कौन है ?

दूसरा ना०—हमारे राणाजी ही तो नहीं है ?

तीसरा ना०—लेकिन नहीं, ये राणाजी तो नहीं जान पडते।

चौथा ना०—कपडे तो राजाओंकेसे ही है। (सिपाहीसे) क्यो जी, तुम जानते हो, वे कौन है ?

सै०—वे जोधपुरके महाराज गजसिह हैं।

पहला ना०—वही न जो महाबतखाँके साथ मेवाड पर आक्रमण करने आये है ?

सै०—हाँ।

दूसरा ना०—ये राजपूत ही है न ?

तीसरा ना०—राजपूत होकर भी राजपूतोंके शत्रु है।

[बहुतसे सैनिकोंके साथ महाराज गजसिंह आते है।]

गज०—(सैनिकसे) किलेका फाटक बन्द है ?

सै०—हाँ महाराज !

गज०—फाटक खोलो, अब यह किला हमारा है।

सै०—महाराज ! बिना अपने प्रभुकी आज्ञाके मैं यह फाटक नहीं खोल सकता।

गज०—प्रभुकी आज्ञा ? तुम्हारे प्रभु अब राणा अमरसिह नही है, तुम्हारे प्रभु अब हम है।

सै०—आप है ! मुझे मालूम नही था। पर तो भी बिना राणा अमरसिंहजीकी आज्ञाके मै किलेका फाटक नही खोल सकता।

गज०—(अपने सैनिकोंसे) इससे फाटककी ताली छीन लो।

सै०—प्राण रहते आप लोग ताली नही ले सकते। (तलवार खींच लेता है।)

गज०—अच्छा, इसे मार डालो।

पहला ना०—(दूसरे नागरिकोंसे) खडे खडे क्या देखते हो ? मारो।

[सब लोग मिलकर गजसिह पर आक्रमण करते है।]

गज०—बहादुरो,—

[गजसिहके सिपाही नागरिको पर आक्रमण करते है। इतनेमें बहुतसे मुगल-सैनिकोंके साथ राणा अमरसिंह आ पहुँचते है।]

राणा—सैनिको, अस्त्र रख दो।

[मुगल सिपाहियोंको देखकर राजपूत सैनिक अस्त्र रख देते हैं।]

राणा—महाराज गजसिह ! यहाँ आपका क्या काम था ?

गज०—हम इस दुर्गमे प्रवेश करना चाहते हैं।

राणा—राज-अतिथि ! राणा अमरसिंह तुम्हारा यथोचित आदर सत्कार करेंगे। मुगलोंके कुत्ते ! ले यह तेरे योग्य अतिथि-सत्कार है! (लात मार कर गजसिंहको जमीन पर गिरा देते हैं।)

राणा—साहसी सैनिक ! दुर्गका द्वार खोल दो। (द्वार खुल जाने पर मुगल सैनिकोंसे) अब तुम लोग वापस जा सकते हो।

[राणा दुर्गमें प्रवेश करतें हैं, दुर्गका द्वार बन्द हो जाता है।]

छट्ठा दृश्य ।

स्थान—मेवाडका पहाडी रास्ता । **समय**—सन्ध्या ।

[सत्यवती, अरुणसिंह और कई चारणियाँ ।]

चारणियाँ गाती है ।

(१)

टूटा है सुखस्वप्न हमारा, तार बीनके टूटे हैं ।
गावें क्या मेवाड़देशके भाग, देख लो फूटे हैं ॥
इस मेवाड शैलकी शोभा सत्यानाश हुई सारी ।
आसमानसे मानो इस पर आकर वज्र गिरा भारी ॥
अब मेवाड़ शिखर पर झंडा लाल नहीं फहराता है ।
दशा देख आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है ॥

(२)

पक्षीगण इसकी कुंजोंमें गीत नहीं अब गाते हैं ।
फूलोंका रस पीनेको अब नहीं भ्रमरगण आते हैं ॥
शशि भी शोभाहीन हुआ है मलय वायु नहिं बहती है ।
छाई दोनों तीर उदासी नदी शुष्क हो रहती है ॥
अब मेवाड़ शिखर पर झंडा लाल नहीं फहराता है ।
दशा देख आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है ।

(३)

जंगलमें मंगल नहिं होता, चहल पहल नहिं गाँवोंमें ।
नरनारी गण फिरें बिलखते फँसे हुए विपदाओंमें ॥
राजपूत वीरोंकी अब है नहीं चमकती तलवारें ।
सुन्दरियाँ भी डरके मारे नहीं वसन भूषण धारें ॥
अब मेवाड़ शिखरपर झंडा लाल नहीं फहराता है ।
दशा देख आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है ॥

(४)

तिमिरावृत मेवाड हुआ है सुख सर्वस्व गँवाया है ।
चारण-गणने यश गाकर बस धीरज उसे धराया है ॥

चला जाय सुख उसका सारा किन्तु कहानी रह जावे।
गूँज उठे मेवाड शून्य यह जब चारण इसको गावें ॥
अब मेवाड शिखर पर झंडा लाल नहीं फहराता है।
दशा देख आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है ॥

[तीन सैनिकोंके साथ हिदायतअलीका प्रवेश ।]

हिदायत०—तुम कौन हो ?

सत्य०—मै चारणी हूँ ।

हिदा०—तुम गलियों और रास्तोंमे यही गाना गाती फिरती हो ?

सत्य०—हाँ, हम लोगोका यही काम है ।

हिदा०—अब तुम यह गीत न गा सकोगी ।

सत्य०—क्यो ?

हिदा०—अब यह मुल्क तुम्हारा नहीं है; मुगलोंके हाथ आ गया है।

सत्य०—मुगलोकी जय हो ! जितने दिनो तक मेवाड स्वाधीन था, उतने दिनों तक हम लोगोंने युद्ध किया। पर जब मेवाडने सिर झुका कर मुगलोका अधिकार मान लिया, तब मुगलोंके साथ हम लोगोंका कोई झगडा नहीं है। लेकिन क्या इसी लिए हम लोग रो भी न सकेगे ? सिपाही साहब ! दुनियामें सभी लोग अपनी माँको चाहते हैं, तब अभागे मेवाडवासी ही उस पर प्रेम करना क्यों छोड दें ?

हिदा०—नहीं, तुम यह गीत न गा सकोगी ।

अरुण०—हम लोग गावेंगे, देखें कौन रोकता है; गाओ माँ ।

हिदा०—अगर तुम लोग यह गाना गाओगे, तो कैद कर लिये जाओगे ।

सत्य०—अच्छी बात है, आप हम लोगोंको कैद कर लीजिए। हम लोग आपके अँधेरे कैदखानेमें ही बैठे बैठे अपने दु:खका यह गीत गावेंगे। गाओ बेटा।

हिदा०—अच्छी बात है ! अब तुम लोग कैद हो गये। (आगे बढता है।)

अरुण०—(तलवार खींचकर) अगर जान प्यारी हो तो खबरदार! माँको हाथ न लगाना।

हिदा०—अरे उद्धत छोकरे ! तलवार रख दे।

अरुण—(कडककर कर) रखा लो !

हिदा०—सिपाहियो ! इसे मारो।

[सिपाही आगे बढकर अरुण पर वार करना चाहते हैं, अरुण उनसे लडता है।]

सत्य०—शाबाश बेटा ! अपनी माताकी रक्षा करो।

[एक मुगल सिपाही घायल होकर गिर पडता है।]

सत्य०—शाबाश बेटा ! प्राण रहते अस्त्र न छोडना। ऐसा ही चाहिए ! वाह ! कैसा आनन्द है !

(हिदायतअली अरुण पर स्वय आक्रमण करता है। अरुणसिहको दोनों सिपाही और हिदायतअली घेर लेते हैं। अपने पुत्रकी मृत्यु निकट समझकर सत्यवती थोडी देरके लिए आँखे बन्द कर लेती है। इतनेमे महावतखाँ कई सिपाहियोंके साथ वहाँ आ पहुँचते है।)

महाबत०—हिदायत अली ! ठहर जाओ।

[सब लोग लडना छोड देते हैं।]

महाबत०—हिदायतअली, तुम्हे शर्म नही आती ! एक लडके पर दो दो जवान मिल कर वार कर रहे हैं, और ऊपरसे तुम भी उनकी मदद करते हो ! छि ! (अरुणसे)—बेटा ! तुम अपनी जानकी परवा न करके अपनी माँको बचा रहे थे ! तुम धन्य हो ! प्राणोंके उत्सर्ग करनेका मार्ग यही तो है ! जीते रहो !

[सत्यवती इतनी देर तक चुपचाप बडे गौरव और आनन्दसे अपने पुत्र अरुणकी ओर देख रही थी। अब वह महाबतखाँकी ओर दो कदम आगे

बढती है और फिर पीछे हट कर सिर झुका लेती है । महाबतखाँ सत्यवतीकी ओर देखने लगते हैं ।]

महा०—बहन ! मै तुमसे क्या कहूँ ! अब तुम्हे 'बहन' कहकर पुकारनेका अधिकार भी मुझे नही रह गया।—तब मै क्या कहूँ ! मुझे क्षमा करो—बहन !

सत्य०—हे ईश्वर !—यह तुमने क्या किया ! मेरा छोटा भाई मुझे बहन कहकर पुकार रहा है, तो भी मै उसे खींच कर हृदयसे नहीं लगा सकती हूँ !—

अरुण०—माँ, ये कौन है ?

सत्य०—ये मुगल-सेनापति महाबतखाँ है ।

महा०—बेटा, मै तुम्हारा मामा हूँ ।

सत्य०—चलो बेटा, हम लोग चलें ।

महा०—कहाँ जाओगी ? मुझे क्षमा करती जाओ ।

सत्य०—महाबतखाँ, तुम जानते हो कि तुमने कौन सा पाप किया है ?

महा०—हाँ, मै जानता हूँ । मैंने अपने हाथसे अपने घरमें आग लगाई है और उसमेसे उठते हुए धूमको पैशाचिक आनन्दसे देखा है।

सत्य०—केवल इतना ही ?

महा०—और क्या ? मैं मुसलमान हो गया हूँ, पर इसके लिए मै यह स्वीकार नहीं करता कि मैंने कोई पाप किया है—जिसका जैसा विश्वास हो वैसा माननेके लिए वह स्वतंत्र है । तो भी—

सत्य०—बहुत ठीक ! (अरुणसे) आओ बेटा, चलें ।

महा०—यदि मुसलमान होनेको भी पाप मान लिया जाय, तो भी वह पाप क्या इतना भयानक है कि मनुष्यके हृदयकी सारी कोमल

प्रवृत्तियोको नष्ट कर दे !--बहन, मैं जानता हूँ कि स्त्रियोका हृदय पवित्रताका तपोवन, आत्मोत्सर्गका लीलास्थल और प्रीतिका नन्दन कानन है। पर क्या आचारके नियम इतने कठोर है कि वे स्त्रीके ऐसे हृदयको भी पत्थर बना दे ! एक बार थोडी देरके लिए तुम यह भूल जाओ कि तुम हिन्दू हो और मै मुसलमान—तुम पीड़ित हो और मै अत्याचारी। केवल इतना ही समझो कि तुम भी मनुष्य हो और मै भी मनुष्य हूँ—तुम बहन हो और मै भाई हूँ। उस बाल्यावस्थाका ध्यान करो जब तुम मुझे गोदमे लेकर घूमती थीं, मेरे गालोको चूमा ले लेकर भर देती थीं और मुझे छातीसे लगाकर सोती थीं ! बहन, स्मरण करो—हम तुम वही मातृहीन भाई-बहन हैं।

सत्य०—हे भगवान्—

महा०—बहन—

सत्य०—अब नहीं सहा जाता! जो होना था सो हो चुका।—छोटे भइया मेरे ! जाओ, मैंने तुम्हारे सारे अपराध क्षमा कर दिये। भगवानसे प्रार्थना है कि वे भी तुम्हे क्षमा कर दे। जाओ भइया, मै अब तुम्हे मुगलसेनापति महावतखाँ नहीं समझती। मेरे लिए अब भी तुम मेरे वही छोटे भाई महीपति हो।--भइया, जाओ।

महा०—अच्छा बहन, अब मै जाता हूँ। (सत्यवतीको प्रणाम करते हैं।)

सत्य०—आयुष्मान् होओ भइया ! (अरुणसे)--चलो बेटा, चले।

हिदा०—तुम लोग कहाँ जाओगे ? मै तुम्हे कैद करूँगा।

महा०—किसीकी मजाल नहीं जो मेरे सामने मेरी बहनका बाल भी बाँका कर सके। जाओ बहन !

हिदा०—खाँसाहब ! अब आप सिपहसालार नहीं है, इस लिए मै आपकी बात नही मान सकता । इस वक्त सिपहसालार हैं शाहजादा खुर्रम ।

[शाहजादाका प्रवेश ।]

शाह०—अच्छी बात है ! खैर, मै खुद हुक्म देता हूँ ! (सत्यवतीसे) जाओ, तुम लोग अपने घर जाओ ।

हिदा०—लेकिन शाहजादा साहब ! यह औरत यो ही गागाकर बगावत फैलाती फिरती है !

शाह०—मै दूरसे उसका गाना सुन रहा था । वह गाना मायूसी और गमसे भरा हुआ है ।

हिदा०—शाहजादा साहब, इस तरहके गानोंसे सल्तनतके अमन-अमानमे खलल पडेगा ।

शाह०—नहीं, सल्तनतके अमन-अमानकी हिफाजत कर ली जायगी । मुगलबादशाह उसकी हिफाजत करना जानते है । हिदायत अली, अगर वतनकी मुहब्बतके इस तरहके गानोंसे सिर्फ मेवाडसे ही नहीं बल्कि सारे हिन्दोस्तानसे मुगलोकी हुकूमत, जाडेके मौसमके एक बादलके टुकडेकी तरह जाती रहे, तो उसे उठ जाने दो। मुगलोंकी सल्तनत इतनी कच्ची और बालू पर बनी हुई नहीं है । उसका पाया हिन्दोस्तानियोकी गहरी और मजबूत मुहब्बत पर है। अगर कोई शख्स मुनासिब तरीकेपर अपने वतनके साथ मुहब्बत करे, अपने मुल्ककी परस्तिश करे तो उसमें कभी दखल न देना चाहिए। अगर सिर्फ इसी लिए सारी सल्तनत चली जाय तो कोई परवा नहीं। हिदायत अली, समझ गये !

हिदा०—जी हाँ, शाहजादा साहब ।

शाह०—(सत्यवतीसे) गाओ बहन, तुम वही गाना गाओ । इस बातका अफसोस नहीं है कि तुम लोग यह गाना गाती फिरती हो, बल्कि अफसोस इस बातका है कि आज मेवाडमे यह गाना सुननेवाले लोग नही हैं । गाओ बहन, कोई डर नही है । मै सुनूँगा । मै तुम्हारे मुल्ककी पुरानी अजमत सुनकर आँसू बहाना जानता हूँ । गाओ, गाओ, तुम सब लोग गाओ । मै भी तुम लोगोका साथ दूँगा । हिदायतअली, तुम भी गाओ । सिपाहियो, तुम लोग भी गाओ ।

(सब लोग वहाँसे गाते हुए जाते है ।)

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयसागरका किनारा । **समय**—सन्ध्या ।

(मानसी अकेली खडी है ।)

मानसी—मेरे ऊपरसे होकर एक आँधी निकल गई है । अब फिर मुझे समुद्रका वही मृदु, गम्भीर और अनादि संगीत सुनाई पडता है । अब तो वह पहलेसे भी सौगुना मधुर जान पडता है ! मेघ हट गये । अब फिर आकाशमे वही नक्षत्रोज्वल नीलिमा दिखाई पडती है,--पर अब वह पहलेसे सौगुनी निर्मल है ! मैं देखती हूँ कि आज मेरा कर्त्तव्यपथ जीवनके छोटे मोटे सुखो और दुःखोंकी सीमा छोडकर बहुत दूर तक फैल गया है ।

[कल्याणी आती है ।]

मान०—कौन ? कल्याणी ?

कल्या०—हाँ राजकुमारी !

मान०—फिर वही 'राजकुमारी' ! अब तो हमारा तुम्हारा नया सम्बन्ध हो गया है ! बहन कल्याणी ! तुम तो फिर रोने लग गई ! छिः !

कल्याणी—नहीं बहन, अब मै नही रोऊँगी । क्या करूँ, रहा नही जाता । इसी लिए मै दौडी हुई तुम्हारे पास चली आई । मुझे धीरज बँधाओ ।

मान०—कल्याणी, तुम अपना सारा दु ख मुझे दे दो और मेरा सुख तुम ले लो ।

कल्या०—तुम्हारा सुख !

मान०—हाँ, मेरा सुख । दु ख मुझे अच्छी तरह पीस डालनेके लिए आया था, पर वह मुझे पीस न सका और न आगे ही पीस सकेगा । मै दु खको हिंसक जन्तुकी तरह बाँधकर वशमे करूँगी और उससे काम लूँगी । कल्याणी, दु खने मेरा बहुत उपकार किया है । इतने दिनो तक मै सुखके राज्यमे रहती थी, दु खका राज्य मुझे दूरसे आँधी या कुहासेकी तरह दिखाई पडता था । अब मैं उसी दु खके राज्यमे वास करने लगी हूँ । मैने शत्रुको जान पहचान लिया है । अब वह मुझे कभी असावधान न पावेगा । इतने दिनो तक जीवन अपूर्ण था, अब वह पूर्ण हो गया ।

कल्या०—बहन, तुम धन्य हो !

मान०—बहन, तुम भी धन्य होओगी !

कल्या०—किस तरह बहन ?

मान०—तुम इस काममे मुझे सहायता दो । आओ, हम दोनो मिलकर मनुष्य जातिके कल्याणके लिए अपना अपना जीवन उत्सर्ग कर दे । तुम्हारा 'कल्याणी' नाम सार्थक हो !—मुझे सहायता दोगी ?

कल्या०—हाँ बहन, दूँगी ।

मान०—अच्छा । तब देखो कि तुम्हे धैर्य्य होता है या नहीं । जिसका यह व्रत हो फिर उसे काहेका दु ख ?

कल्या०—अच्छी बात है ! मेरा व्यर्थ प्रेम तुम्हारे ही काममें सार्थक हो ।

मान०—क्या तुम अब भी महाब्रतखाँके प्रति घृणा करती हो ?

कल्या०—बहन, उस दिन मै अभिमान करके उन्हे कडी कडी बाते सुनाकर चली आई थी और यही कह आई थी कि मैं तुमसे घृणा करती हूँ, लेकिन अब मुझे मालूम हुआ कि मुझमे उनके प्रति घृणा करनेकी शक्ति नहीं है । बाल्यावस्थासे ही जिसका ध्यान करके मैं इतनी बडी हुई हूँ, यौवन-कालमें जिसे मैने अपने जीवनका ध्रुव तारा माना है, इस हताशाके अन्धकारमे भी जिसकी चिन्ता मेरे भीतर रावणकी चिताकी तरह बराबर जल रही है, उसके प्रति मैं घृणा नही कर सकती । वह केवल बात ही बात है ।

मान०—कल्याणी, उसकी आवश्यकता भी नहीं है । तुम अपने प्रेमको मनुष्यत्वमे—सारे मनुष्यसमाजमे व्याप्त कर दो । तुम्हे शान्ति मिलेगी । विश्वप्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। वह योग्य और अयोग्यका भी विचार नहीं करता। वह सेवा करके ही सुखी होता है ।

[सत्यवती आती है ।]

सत्य०—मानसी, तुम्हे तुम्हारे पिताजी बुला रहे हैं ।

मान०—वे लौट आये ?

सत्य०—हाँ ।

मान०—मुगलोंके साथ सन्धि हो गई ?

सत्य०—नहीं । महाराजने देखा कि शाहजादा खुर्रमने मेलके लिए उनके पास जो पत्र भेजा था, उसमेंकी सब बातें खाली जबानी जमाखर्च ही थीं। वे केवल आकाश-कुसुम थीं, केवल मृगतृष्णा थीं।

मान०—क्यो ?

सत्य०—(थोडी देर तक चुप रहकर) मानसी ! मेल होता है बराबरवालोंमे । हाथका मेल हाथके साथ होता है । पैरके आघातके साथ पीठका मेल नहीं होता, जयध्वनिके साथ रोने पीटनेका मेल नही होता । शाहजादा चाहते है कि राणाजी दुर्गसे बाहर निकलकर शाही फरमान ले । मानसी ! राणा प्रतापसिंहके पुत्रके लिए इस अपमानकी अपेक्षा तो मृत्यु ही अच्छी है ।

मान०—अब पिताजी क्या करेगे ?

सत्य०—आज उन्होने सब सामन्तोको बुलाकर अपने पुत्रको सिंहासन पर बैठा दिया है और राज्यका भार त्याग दिया है । वे रानीको साथ लेकर राज्यसे निकल जायँगे और जंगलमें जा रहेंगे । मानसी ! आज मेवाडका पतन होगया ।

मान०—मेवाडका पतन क्या आज आरम्भ हुआ है ! नहीं, उसका पतन तो बहुत दिन पहले ही आरम्भ हो चुका है । यह पतन उस परम्पराकी एक गाँठ मात्र है ।

सत्य०—तब वह पतन आरम्भ कब हुआ था ?

मान०—जिस दिनसे मेवाड अपनी आँखोपर पट्टी बाँध आचारका हाथ पकडकर केवल उसीके सहारे चलने लगा और जिस दिनसे वह सोचना-समझना भूल गया । जबतक स्रोत बहता रहता है, तबतक जल शुद्ध रहता है, पर जब स्रोतका बहना बन्द हो जाता है तब उसमे कीडे पैदा होने लगते है । इसीसे आज इस जातिमे नीच स्वार्थ, क्षुद्रता, भ्रातृ-द्रोह और विजाति-द्वेष आदि दोषोका जन्म हुआ है । पूर्वकालका उदार—अति उदार हिन्दूधर्म—आज प्राणहीन होगया है,

आचारकी ठठरी भर रह गई है। जिसका धर्म्म चला गया, क्या उसका पतन न होगा ? अब यह देखना चाहिए कि जातिमे कितना पाप फैल गया है। मेवाड़के पतनके लिए व्यर्थ रोनेसे क्या होगा ?

सत्य०—तब क्या इस दु खमे यही सान्त्वना है ?

मान०—नही, इससे भी बढ़कर सान्त्वना है। वह सान्त्वना यह है कि मेवाड चला गया है तो उसे जाने दो, हमे उससे भी बडी सम्पत्ति प्राप्त हो। हम चाहती है कि हमारे भाई नैतिक बलसे—चरित्रबलसे शक्तिमान हो कि जिससे वे दु खमे, निराशामे और आँधीके अन्धकारमे धर्म्मको अपने जीवनका ध्रुव तारा बनावे। और यदि वे ऐसा न करे तो नष्ट हो जायँ, हमें उसके लिए दु.ख न होगा।

सत्य०—हमारे भाई नष्ट हो जायँ और हम उन्हे नष्ट होते हुए चुपचाप देखा करे ?

मान०—नही, हम उन्हे प्राण-पणसे बचानेकी चेष्टा करे। पर तो भी यदि हम अपने प्रयत्नमे कृतकार्य्य न हो सके तो कोई वश नही--ईश्वरका मगल नियम पूरा हो। जिस प्रकार स्वार्थकी अपेक्षा जातीयता बडी है, उसी प्रकार जातीयताकी अपेक्षा मनुष्यत्व बडा है। जातीयता यदि मनुष्यत्वकी विरोधिनी हो, तो ऐसी जातीयताका मनुष्यत्वके महासमुद्रमे विलीन हो जाना अच्छा है। अच्छा हो यदि ऐसे मनुष्यत्वविहीन देशकी स्वाधीनता डूब जाय, और वह जाति फिर मनुष्य बन जाय।

सत्य०—क्या कभी ऐसा होगा ?

मान०—क्यो नहीं होगा! हमे चाहिए कि हम सब उसीकी साधना करे। उच्च साधना कभी निष्फल नही होती। इस जातिके लोग फिर मनुष्य बनेगे।

सत्य०—कब ?

मान०—जिस दिन लोग इन सीमासे बाहर पहुँचे हुए आचारोके क्रीतदास न रह कर स्वय सोचना–विचारना सीखेगे, जिस दिन उनके भीतर भावोका स्रोत फिरसे बहेगा, जिस दिन लोग जिसे उचित और कर्त्तव्य समझेगे उसे निर्भय होकर करते जायँगे–इसमे किसीकी प्रशंसाकी या किसीके बिगडने या नाराज होनेकी अपेक्षा न रक्खेगे,–किसीकी टेढी की हुई भौहोकी जरा भी परवा न करेगे और जिस दिन लोग युगोकी पुरानी पोथियाँ फेक कर नया धर्म्म ग्रहण करेंगे ।

सत्य०—वह नया धर्म्म कौनसा ?

मान०—उस धर्मका नाम है प्रेम। जो कोई इस धर्म्मका उपासक बनता है, उसे अपने आपको छोड कर क्रमश भाईके साथ, जातिके साथ, मनुष्यके साथ, और उसके बाद मनुष्यताके साथ प्रेम करना सीखना पडता है। इसके बाद उसे स्वय और कुछ नही करना पडता। ईश्वरका कोई अज्ञेय नियम उसके भविष्यको स्वयं ही सुधार देता है। बहिन, जातीय उन्नतिका मार्ग लहूकी नदियोके बीचसे होकर नही है, बल्कि प्रेम-पूर्वक परस्पर आलिंगनके मध्यसे होकर है। जो पथ चैतन्य देव दिखला गये है, उसी पथ पर चलो। यदि हम स्वय ही नीच, कुटिल और स्वार्थी बने रहे तो राणा प्रतापसिहकी स्मृति मस्तक पर रखकर और गत गौरवका निर्वाण-प्रदीप गोदमे रख कर जन्मभर रोते रहनेसे भी हमारे किये कुछ न होगा।

[सब जाती है ।]

आठवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयसागरका किनारा ।

समय—सन्ध्या ।

(बादल घिरे हुए है । राणा अमरसिंह अकेले खडे है ।)

राणा—मेवाड़का आकाश क्रोधमे गरज रहा है । मेवाडके पहाड लज्जासे मुँह ढाँके हुए हैं । मेवाडका सरोवर क्षोभके मारे किनारोसे टकरा रहा है । मेवाडके कुल-देवताओंने रोषसे मुँह फेर लिया है । आज हमारे हाथो हमारे मेवाडका—राणा प्रतापके मेवाड़का—पतन हो गया । हाय ! (इधर उधर टहलने लगते हैं ।)

[महाबतखाँ आते है ।]

राणा—बन्दगी जनाब !

महा०—मेवाडके राणाकी जय हो !

राणा—जनाब सिपहसालार साहब ! आप खाली लहूकी नदियाँ बहाना ही नहीं जानते, बल्कि व्यग करना भी खूब जानते है । अच्छी बात है, मेवाडके राणाकी जय हो !

महा०—नहीं महाराज ! मै व्यग नहीं करता ।

राणा—तुम्हारे व्यग करने या न करनेसे कुछ होता जाता नहीं। महाबतखाँ, हम तुमसे एक बार मिलना चाहते थे ।

महा०—कहिए, क्या आज्ञा है ।

राणा—तुममें विनय तो ब है ! अच्छा सुनो । हमने तुम्हें एक ऐसे कामके लिए बुलाया है जो तुम्हारे सिवा और किसीसे नहीं हो सकता ।

महा०—आज्ञा कीजिए, महाराज !

राणा—महाबतखाँ, जरा एक बार हमारी ओर देखकर बतलाओ तो सही कि तुम हमारे कौन हो ?

महा०—महाराज, मैं आपका भाई हूँ।

राणा—बहुत ठीक; और तुमने काम भी भाईके योग्य ही किया है। तुमने अपने पितामह और प्रपितामहकी भूमि मेवाडको मुगलो द्वारा पद-दलित कराया है! तुम्हारे दोनों हाथ उसके लहूसे रँगे हुए हैं!

महा०—महाराज, मैंने बादशाहका नमक खाया है।

राणा—सो कबसे? महाबतखाँ, जाने दो, तुमने तुम्हारा जो काम था उसे किया। उसके लिए तुमसे वादविवाद करना व्यर्थ है। जो विधर्मी हो, मुगलोंकी जूठन खानेवाला हो, उसके लिए यह काम अनुचित नहीं है। जो एक अनियम और उद्दाम स्वेच्छाचारका उद्गमन हो उसके लिए यह काम अनुचित नहीं है। तुमने मेवाडका ध्वस किया है, पर वह काम अभी तक पूरा नहीं हुआ। तुम्हे उचित है कि तुम उसके साथ मेवाडके राणाका भी अन्त कर दो। यह लो, तलवार। (*तलवार आगे बढाते है।*)

महा०—राणा—

राणा—जो हम कहते है उसके विरुद्ध कुछ भी मत कहो। सुनो, तुम हमें मारो। इससे तुम्हारा कलंक कुछ अधिक न बढ जायगा। और हम तुम्हे कोई ऐसा काम भी नहीं बतला रहे हैं जो तुम्हें अप्रिय हो। हम जानते हैं कि तुम हमारा रक्त पीनेके लिए छटपटा रहे हो। तुम्हारा दाहिना हाथ हमारे प्राण लेनेके लिए आग्रहसे काँप रहा है। तुम हमारा वध कर डालो।

महा०—महाराज, महाबतखाँ इतना हीन नहीं है। मैंने तलवार चलाकर और आग लगाकर मेवाड-भूमिको श्मशान अवश्य बना दिया है, पर तो भी मैंने अन्याय्य युद्ध नहीं किया है, न्याय्य युद्ध किया है।

राणा——न्याय्य युद्ध ! महाबत, तुम इसे न्याय्य युद्ध कहते हो ? एक छोटेसे राज्यके मुट्ठीभर सैनिको पर इतने बडे साम्राज्यकी विपुल सेना-की चढाई ! एक चिनगारीको बुझानेके लिए समुद्रका प्रवाह ! एक बालककी आत्मा पर नरकका दु:स्वप्न ! और फिर भी उसे न्याय्य युद्ध बतलाते हो ? जाने दो, तुम जीत तो गये ही हो, अब उसमे जो कसर है उसे भी पूरी कर डालो। यह तलवार राणा प्रतापसिहजी मरते समय दे गये थे और कह गये थे—' देखो, इसका अपमान न होने पावे।' पर हमने इसका अपमान किया है। अत वह अपमान हमारे रक्तसे धुल कर साफ हो जायगा।

महा०——महाराज, महाबतखॉ योद्धा है, जल्लाद नही।

राणा——अच्छी बात है। तो फिर युद्ध कर लो। लो, हाथमे तलवार। (तलवार सँभालते है।)

महा०——महाराज, मैने मेवाडके विरुद्ध अस्त्र उठाना छोड दिया है।

राणा——वह कबसे ? तलवार लो-तलवार लो। आज मेवाडके श्मशान पर, मृत माताका शव कन्धे पर रख कर हम तुम्हे द्वंद्वयुद्धके लिए आह्वान करते है।

महा०——महाराज, सुनिए——

राणा——नही, हम कुछ भी न सुनेगे। भीरु म्लेच्छ ! कुलागार ! युद्ध कर। देखे, तेरी किस वीरता-किस बहादुरीके कारण सारा भारत कॉपता है। मै छोडूँगा नहीं। अधम ! नरकके कीड़े ! शैतान !

महा०——अच्छी बात है महाराज, तब लड ही लीजिए। (तलवार निकाल कर) सावधान ! भारतमे यदि महाबतखॉका कोई प्रतिद्वद्वी है तो एक राणा ही है, तो भी सावधान !

[दोनों तलवारोंको सँभालते है ।]

राणा—आज भाई भाईमे युद्ध होता है, ऐसा युद्ध ससारमे किसीने न देखा होगा । बस अब पृथ्वी पर प्रलय हो जाय !

[इतनेमें मानसी दोनोंके बीचमें आ खडी होती है । उसके बाल बिखरे हुए हैं ।]

मानसी—यह क्या पिताजी ! यह क्या—(महाबतखाँसे) शान्त होओ !

राणा—हट जाओ बेटी, तुम इसमे बाधा मत डालो ।

मानसी—पिताजी ! शान्त होओ । जो कुछ सर्वनाश होना था सो हो चुका । अब उस सर्वनाशको अपने भाईके रक्तसे रजित मत करो। इस शोककी सान्त्वना हत्या नहीं है । इसकी सान्त्वना है—फिरसे मनुष्य होना ।

राणा—मनुष्य होना ?—सो कैसे मानसी ।

मानसी—शत्रु-मित्रका ज्ञान भूल कर, विद्वेष त्याग कर, अपनी कालिमा और देशकी कालिमाको विश्व-प्रेमके जलसे धोकर !—गाओ चारणियो, वही गीत गाओ जो मैंने तुम लोगोंको सिखलाया है ।

[गेरुए वस्त्र पहने हुए बहुतसी चारणियाँ वहाँ गाती हुई आ जाती है । मानसी भी उनके साथ गाने लगती है ।]

सोहनी—गजलकी धुन ।

तुम सोक काहेको करौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ ।
जो देस छूट्यो दुख न तौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ ॥
है कोप औरन पै वृथा, जो आप अपने शत्रु हौ,
है दोष अपनो, मन धरौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ ॥
'वर्त्तमान' आशा-रहित, जो चाहौ मिटि जाय ।
तौ भाई भाई मिलौ, करौ सप्रेम सहाय ॥

'यह आपनो,' 'यह गैर,' तजि यह, गैरको अपनो करौ।
यह जग भवन अपनो गनौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ॥
होय शत्रु उन्नत-हृदय, जो उदार तौ ताहि।
प्रेमसहित दीजै हृदय, सबसों सदा सराहि॥
अरु मित्र जो है धूर्त कपटी, शत्रु वह सबसे बड़ौ।
तुम दूरही वासों रहौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ॥
जगमहँ द्वै सेना खड़ी, करिबेको नित जंग।
पाप-सैन्य तजि पुण्यके, दलको कीजै संग॥
जगदीसको नितही नवौ, डूबै स्वदेस समाज हू।
है धर्म जित तितही रहौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ॥*

राणा—महाबत!

महा०—महाराज!

राणा—तुम्हारा कोई दोष नही है। हमारा ही दोष है। भाई क्षमा करो।

महा०—भइया, आप मुझे क्षमा करें।

[दोनों गले मिलते है।]

अवनिका पतन।

* यह गीत श्रीयुक्त पण्डित रूपनारायणजी पाण्डेयका बनाया हुआ है।

परिशिष्ट ।

काफी----दीपचन्दी ठेका ।

हाय यह कैसी विपति भई ।
सुखको सपनो मिट्यो अचानक, सुखकी नींद गई ॥ हाय०॥

टूटि गये हैं तार हृदयकी बीनाके सबई ॥
या मसान महँ भग्न हृदयसों गावैं कहा दई ! ॥ हाय०॥

या मेवार-पहार-सिखरसों गरिमा मनौं गिरी ।
वज्र-गर्भ दुख-घटा सघन ह्वै घर घर घोर घिरी ॥ हाय० ॥

उन्नत गढ़ मेवार सिखरपै उड़ै न लाल धुजा ।
बाँके बीरनकी रनके हित फरकै नाहिं भुजा ॥ हाय०॥

हीन साज यह घोर लाज यह, नीकी लगत नहीं ।
अन्धकार गभीर! छिपा ले, देखै जगत नहीं ॥ हाय०॥

बोलत नाहिं कुंजमहँ कोकिल अब उत्साह-भरे ।
खिलै न फूल, मधुप मधुहित नहिं आवत चाह-भरे ॥ हाय०॥

चलै न मन्द मलय-मारुत, ससि हँसै अकास नहीं।
सरिताके दोउ तट चुप, चिन्तित, मालिन, विलास नहीं ॥हाय०

वन विषादमहँ मगन, गॉव, पुर सूने, अँधियारे ।
प्रजा मालिनमुख, नीरव, घर घर सबही दुखियारे ॥ हाय० ॥

नहिं मेवार-वीर खुलि खेलत, कर खर खरग लिये ।
मलिनमुखी सुमुखी न हँसै कहुँ, ह्वै भयभीत हिये ॥ हाय० ॥

अन्धकार छायो, न देसको बाकी कछू रह्यो ।
सरबस, सुख, स्वतन्त्रता, सबही समय-प्रवाह बह्यो ॥हाय०॥

चारन कवि बरनी स्वदेसकी पिछली कीर्त्ति-कथा ।
तिहि बिनको धीरज दे हरि है हमरी हृदय-व्यथा? ॥ हाय०॥

सुखी प्रजाको कलरव कितहू यद्यपि सुनि न परै, ।
तऊ गये गौरवकी गाथा, हियको शोक हरै ॥ हाय०॥

चारनकवि बरनी गत-गाथा, आशामय सुखदा,
सूने यहि मेवार देसमहँ गूँजत रहै सदा ॥ हाय०॥

[पाँचवे अकके छट्टे दृश्यके स्थानमे यह गीत भी गाया जा सकता है
इसके रचयिता श्रीयुत प० रूपनारायणजी पाण्डेय है ।]